शैक्षिक

संदर्भ

अंक-49, मूल्य 15 रुपए

संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी.एन. सुब्रह्मण्यम
दीपक वर्मा
गौतम पांडेय

वितरण:
महेश बसेड़िया
अनिल लोखंडे

सहयोग:
बृजेश सिंह
अनिल पटेल
रामभरोस यादव
राकेश खत्री

शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-49. अप्रैल-सितंबर 2004

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001
फोन : 07574 - 253518
eklavyamp@mantrafreenet.com
eklavyah@sify.com

एक प्रति : 15 रुपए
वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
आजीवन सदस्यता : व्यक्तिगत 1000 रुपए
संस्थागत 2000 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ : अपने जीवन का एक चरण पूरा करने के बाद, अंडे को तोड़कर बाहरी दुनिया में पहला कदम रखता हुआ मुर्गी का चूज़ा। बाकी अंडों में मौजूद चूज़े भी अपनी बारी का इंतज़ार कर रहे हैं। बाहरी दुनिया में चूज़ा जितनी आसानी से सांस लेता है उसे देखकर यह सवाल उठना स्वाभाविक ही है कि अंडे के कड़े खोल के भीतर रहते हुए चूज़ा किस तरह सांस लेता होगा या सांस लेता भी है या नही? संबंधित लेख पढ़िए - पृष्ठ 13 पर।

पिछला आवरण : जे.बी.एस. हाल्डेन - एक प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी, विज्ञान लेखक, वामपंथी विचारधारा से लगाव, भारत में आकर किए गए कार्य..... ऐसे ही ढेर सारे पहलू थे उनकी ज़िंदगी के। उनकी ज़िंदगी का एक छोटा-सा लम्हा यह भी था - एक कक्षा को पढ़ाते हुए हाल्डेन। इस अंक में पृष्ठ 54 पर हाल्डेन की जीवनी और पृष्ठ 77 पर उनके द्वारा लिखी गई कहानी पढ़िए।

*इस अंक में चित्र निम्न किताबों से : **एग टू चिक** : मिलिसेंट इ. सेलसम; प्रकाशक - वर्ल्ड वर्क लिमिटेड। **ए मॉडर्न इंट्रोडक्शन टू बायोलॉजी:** बी. एस. बेकेट; प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। **द इलस्ट्रेटेड साइंस एंड इनवेंशन एनसायक्लोपीडिया:** प्रकाशक: एच.एस. स्टुटमेन, न्यूयॉर्क। **द हेमलिन हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड इन कलर; भाग 2: द ट्राइअम्फ ऑफ द ग्रीक्स;** प्रकाशक: पॉल हेमलिन। **साइंटिफिक अमेरिकन,** मार्च 1970*

विलंब के लिए खेद है

संदर्भ को नियमित रूप से हर दो महीनों में आप तक पहुंचा पाने के वायदे के बावजूद हम एक बार फिर काफी पिछड़ गए हैं। एक और गलती हमसे यह भी हुई कि हम अपने पाठकों को – खासकर वार्षिक सदस्यों को अंक में हो रहे विलंब की सूचना नहीं दे पाए।

समय को पाटने के लिहाज से इस अंक को अप्रैल से सितंबर तक बढ़ाया जा रहा है। लेकिन इसे एक अंक के बराबर ही माना जाएगा। इसलिए वार्षिक सदस्यों को उनकी सदस्यता के पूरे अंक मिलेंगे।

संदर्भ को जिस तरह शिक्षक और विद्यार्थी वर्ग से समर्थन मिल रहा है, वह हमें संदर्भ की सार्थकता का अहसास दिलाता रहा है। हम अभी भी पूरी कोशिश कर रहे हैं कि संदर्भ के माध्यम से आपको स्तरीय सामग्री दी जा सके। हमारी यह आगे भी कोशिश रहेगी कि संदर्भ आप तक हर दो महीनों में पहुंचाने का तारतम्य हर हाल में स्थापित हो सके।

इस अंक के प्रकाशन में हुए विलंब के लिए हमें बेहद खेद है। कृपया अपने विचारों व सुझावों से हमें अवगत करवाइए।

– संपादन मंडल

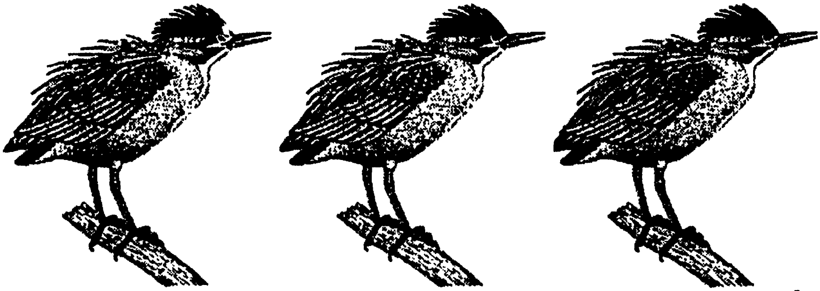

क्या अंडा सांस लेता है? 13

अंडे के भीतर विकसित होने वाला चूज़ा अंडे में 21 दिन बिताता है। अंडे के भीतर चूज़े के लिए भोजन की तो व्यवस्था होती है, लेकिन क्या ऑक्सीजन भी पर्याप्त मात्रा में भरी होती है? यदि ऐसे इंतज़ामात नहीं होते हैं तो चूज़ा अंडे के भीतर ऑक्सीजन कैसे प्राप्त करता है?

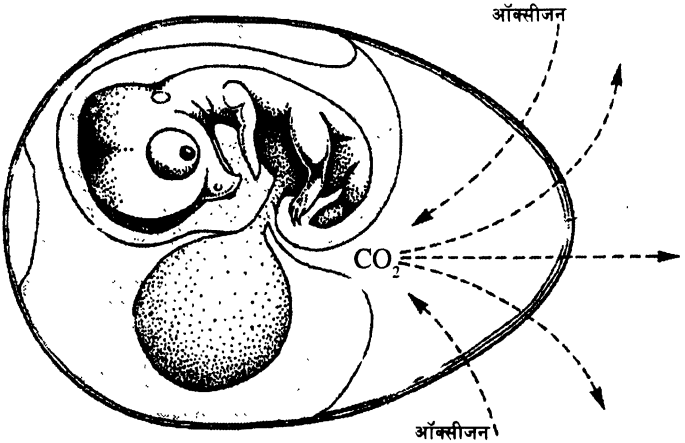

मुर्गी के अंडे में विकसित हो रहा 10 दिन का भ्रूण

राजा का मुकुट और आर्किमिडीज़ 29

राजा के मुकुट में मिलावट का पता लगाने वाला किस्सा शायद सभी को पता है। इस किस्से में कितनी सच्चाई है और कितनी किवदन्ती? इसमें कोई शक नहीं है कि आर्किमिडीज़ ने तैरने का सिद्धांत प्रतिपादित किया, परन्तु प्रश्न यह है कि मुकुट में मिलावट का पता लगाने के लिए आर्किमिडीज़ को तैरने के सिद्धांत की वाकई ज़रूरत थी क्या? या उस समय मौजूद दूसरे तरीकों से भी सुनार की बदमाशी पकड़ी जा सकती थी? उस घटना के तेईस सौ साल बाद भी एस. श्रीनिवासन व अन्य कई लोग आज भी इस तफ्तीश में लगे हुए हैं।

किसान आंदोलन 59

आधुनिक भारत के किसान आंदोलनों के इतिहास में भागलपुर के सोनबरसा गांव के किसान आंदोलन को वैसी शोहरत हासिल नहीं है जैसी चंपारन या तेलंगाना जैसे आंदोलनों को हासिल है। फिर भी सोनबरसा का आंदोलन कई मायनों में महत्वपूर्ण है। यहां के अत्यधिक दबे-सताए किसानों ने ज़मींदार के खिलाफ एकजुट होने की हिम्मत दिखाई। साथ ही उन्होंने इस आंदोलन में किसी भी किस्म की बाहरी मदद नहीं ली – यहां तक कि किसी नामी किसान नेता का नेतृत्व भी नहीं। कुछ साल बाद इस पूरे वाकिए को स्वामी सहजानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक में लिपिबद्ध किया। किसान आंदोलन के अन्य आयामों को समझने के लिए पढ़िए यह लेख।

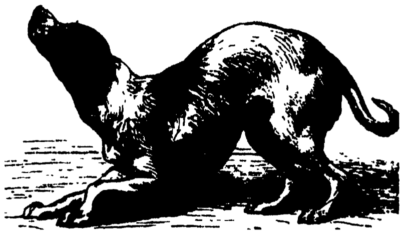

शैक्षिक संदर्भ

अंक 49 अप्रैल-सितंबर 2004

इस अंक में

आपने लिखा . . . 4

वो विज्ञान दिवस . . . 6
आमोद कारखानीस

क्या अंडा सांस लेता . . . 13
के. आर. शर्मा

सज़ा . . . 24
वृषाली वैद्य

राजा का मुकुट और . . . 29
एस. श्रीनिवासन

इंजेक्शन की शीशी . . . 42
उमेशचंद्र चौहान

ज़रा सिर खुजलाइए . . . 46

घर्र–घर्र घराट . . . 49
कमलेश उप्रेती एवं विनोद

जे.बी.एस. हाल्डेन, एक . . . 54
अरुण कुमार सिंह

किसान आंदोलन . . . 59
स्वामी सहजानंद सरस्वती

जादूगर के साथ . . . 77
जे.बी.एस. हाल्डेन

फोटोक्रोमेटिक कांच . . . 96

आपने लिखा

अंक 48 ज्ञानवर्द्धक रहा। इसकी उत्कृष्ठता को देखते हुए कई बार मन में सवाल उठता है कि इसे सभी प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों में क्यों नहीं अलग से पढ़ाया जा सकता। इससे छात्रों को छद्म ज्ञान से मुक्ति मिलेगी और वे विज्ञान विषय की रोचकता को समझने में समर्थ होंगे। उनके तार्किक ज्ञान में वृद्धि होगी। लेकिन ऐसा संभव हो तब न!

'डॉक्टर कालबाग और विज्ञान' लेख प्रेरणादायक लगा। ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। इन्हें नायक कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी।

हाल्डेन के लेख तो लगातार जीवन के बारे में जानकारी दे रहे हैं जो अमूल्य है। 'क्या हम अपने विद्यार्थियों के साथ न्याय कर रहे हैं?' लेख एक ईमानदार अध्यापक की व्यथा को दर्शाता है। लेखिका ने शिक्षा की सही स्थिति का नज़ारा पेश किया है। सच में हमारी शिक्षा व्यवस्था छात्रों की क्षमताओं और संभावनाओं को कुचल रही है। सभी विद्यार्थी अंकों की दौड़ में शामिल हैं। यह दौड़ उनमें सामुदायिकता का अभाव पैदा कर रही है। लगता है सभी को तोता बनना मंजूर है।

'तेइस नुआ दो सौ सात' के लेखक को साधुवाद। इस कहानी को पढ़कर अनायास मुझे अपने गणित के अध्यापक याद आ गए। ऐसे अध्यापकों की मौजूदा दौर में भी कमी नहीं है, जो प्रतिभाओं को कुचलने में आनंद महसूस करते हैं।

'कहानी सुनाने का हुनर' वाकई लाजवाब रहा। नि:संदेह आज अध्यापकों में कहानी कहने की कला का अभाव दिखता है। यदि इसे स्कूली पाठ्यक्रम में अनिवार्य कर दिया जाए तो इससे सार्थक और कुछ नहीं हो सकता।

रमेश शर्मा
केशवपुरम, दिल्ली

अंक 48 पहले की तरह उपयोगी लगा। 'दुनिया को नापना' लेख रोचक लगा। मैंने सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण के बारे में पढ़ा और देखा भी परन्तु शुक्र का सूर्य के सामने से गुज़रना कभी नहीं सुना या देखा था। संदर्भ के साथ मिले चश्मे से इसे मैंने देखा। 'उड़ते ड्रेगन' पढ़ते समय बचपन की यादों में खो गया।

कमान सिंह पदम सिंह गोरखा
येरवडा खुला कारागार, पुणे

संदर्भ का ताज़ा अंक मुझे प्राप्त हो गया है। सामग्री पसंद आई। लेकिन फिर भी लिखना पड़ रहा है कि पिछले कुछ अंकों की सामग्री में अब इतनी गहनता नहीं रही जितनी होनी चाहिए। स्तर बढ़ाएं तो अच्छा रहेगा।

बजरंग लाल जेठू
लक्ष्मणगढ़, सीकर, राजस्थान

आपके द्वारा भेजी गई संदर्भ का अंक 48 मिला। साथ ही शुक्र पारगमन देखने के लिए चश्मा भी मिला। यहां हमने और हमारे कई साथियों ने उस चश्मे से वह दुर्लभ नज़ारा भी देखा।

राजकुमार गुप्ता
पैठण खुली जेल

आपकी पत्रिका गणित और विज्ञान के छात्रों और शिक्षकों के लिए उपयोगी है। अभी तक मैंने संदर्भ का सिर्फ एक अंक ही पढ़ा है और मैं इसका कायल हो गया हूं।

विष्णु सोनार
डिब्रूगढ़, असम

आपसे अनुरोध है

- संदर्भ का वार्षिक सदस्यता शुल्क,
- अपनी सदस्यता का नवीनीकरण,
- अपने पते में परिवर्तन की सूचना,
- संदर्भ न मिलने संबंधी खत

'एकलव्य' भोपाल के पते पर भेजिए।

हमारे वितरण विभाग का पता है:

एकलव्य
ई-7/453, एच.आई.जी.
अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म. प्र.
पिन: 462016

वो विज्ञान दिवस

आमोद कारखानीस

मैंने कई बार यह महसूस किया है कि यदि आपकी शिक्षा किसी नामी-गिरामी संस्थान से हुई हो तो लोग आपको लेकर कई तरह के पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो जाते हैं। जैसे मैंने आई.आई.टी. से इंजीनियरिंग की पढ़ाई की है। चूंकि आई.आई.टी. जैसा नाम जुड़ा है सो लोग सोचते हैं कि मेरी विज्ञान पर खासी पकड़ होगी; फिर स्कूली साइंस मेरे लिए किस खेत की मूली है! बच्चों को समझाना, उनके सवालों के जवाब देना एकदम मेरे बाएं हाथ का खेल होगा। क्या आपको भी यही लगता है? खैर, पहले किस्सा पढ़ लीजिए, फिर आप तय कीजिए।

तो भाई साहब, एक दिन मेरे एक शिक्षक मित्र मेरे घर आए। उनके स्कूल में विज्ञान दिवस के कार्यक्रम में प्रमुख अतिथि की कमी पड़ रही थी, और उन्हें मेरा नाम याद आ गया। सो न्योता लेकर घर आए और बताने लगे, "विज्ञान दिन के मौके पर स्कूल में एक कार्यक्रम का आयोजन किया है। आप किसी भी पसंदीदा विषय पर भाषण दे सकते हैं!"

मैं पिछले कई वर्षों से इस बात का

चित्र अशोक कंबल

हिमायती रहा हूं कि स्कूलों में विज्ञान पढ़ते समय बच्चों को प्रयोग करने के भरपूर मौके मिलने चाहिए। ऐसे ही एक स्कूली कार्यक्रम होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से मैं जुड़ा रहा हूं। सो सिर्फ भाषण-प्रवचन से काम कैसे

चला पाता, इसलिए मैंने उन्हें बताया कि हम भाषण-वाषण तो नहीं देंगे, पर विज्ञान के कुछ मज़ेदार प्रयोग ज़रूर करके देखेंगे और उन्हें विद्यार्थियों से भी करवाएंगे।

मेरे विचार सुनकर शिक्षक ने तुरंत चिंता व्यक्त की, "पर इतने सारे विद्यार्थियों से प्रयोग करवाने के लिए तो हमारे पास कोई प्रयोग शाला ही नहीं है!"

मैंने उन्हें समझाया कि हमारी यह अवधारणा ही गलत है कि विज्ञान के प्रयोगों के लिए बड़े-बड़े उपकरणों और समृद्ध प्रयोगशाला की ज़रूरत है। "हम विद्यार्थियों से ऐसे प्रयोग करवाएंगे जो उनके आसपास या घर में आसानी से उपलब्ध चीज़ों से किए जा सकते हैं। आप निश्चिंत रहिए, प्रयोगों के लिए साधन-सामग्री भी मैं जुटाकर ले आऊंगा।"

इस बातचीत के कुछ दिनों बाद मैं विज्ञान दिवस की बात को भूल चुका था। अचानक एक दिन जब उस शिक्षक मित्र ने फोन किया कि कल विज्ञान दिवस पर स्कूल आना है तो मुझे सब कुछ याद आ गया। लेकिन अब तो काफी कम समय बचा था। मैंने किसी तरह जल्दी से प्रयोगों के लिए ज़रूरी कुछ सामान जुटा लिया। मैं सोच रहा था कि सरल प्रयोग हैं, आसानी से कर दिखाएंगे और थोड़ी बहुत अतिरिक्त जानकारी दे देंगे। दो या

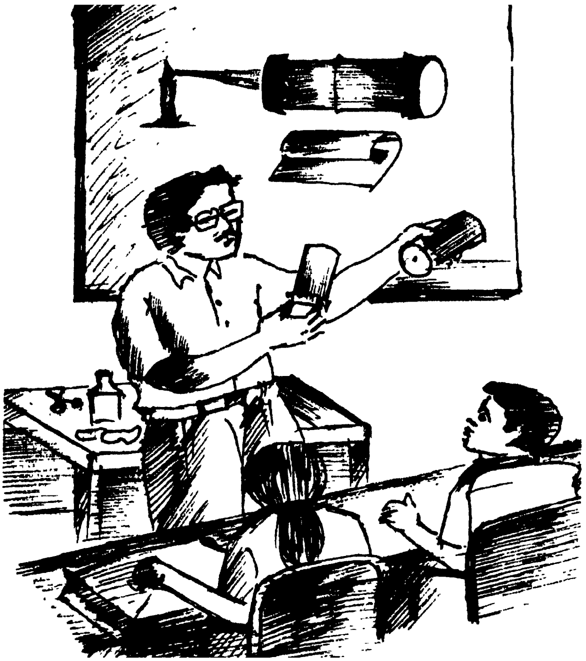

तीन घंटे के प्रोग्राम में कोई खास दिक्कत नहीं होनी चाहिए!

प्रकाश के प्रयोग

मैंने तय किया था कि प्रकाश के प्रयोगों से शुरुआत करेंगे। पहला प्रयोग था पिनहोल कैमरे से सूरज का बिम्ब बनाकर दिखाना। जब विज्ञान दिवस का कार्यक्रम शुरू हुआ तो काफी देर तक अध्यक्षीय भाषण और स्वागत भाषण चलता रहा। ये सब खत्म होते-होते सूरज आसमान में काफी ऊपर चढ़ आया था। मैं ढूंढने लगा कि कक्षा में धूप कहां से आती है? तीसरी मंज़िल पर स्थित इस कक्षा में धूप आने के लिए सिर्फ एक बरामदा था, वो भी जाली लगाकर बंद किया हुआ था।

चूंकि सूरज काफी चढ़ चुका था इसलिए सूरज की किरणों तक पहुंचने के लिए मुझे बरामदे में एक स्टूल पर खड़े होकर, अपना एक हाथ जाली से बाहर निकालना पड़ रहा था। इन प्रयासों के बावजूद कागज़ की छाया तो कहीं और ही पड़ रही थी। अब क्या अवलोकन करें। हां, बाहर बहुत तेज़ धूप थी पर यह बम्बई का स्कूल है, न इस स्कूल की छत तक पहुंचने

का कोई रास्ता था, न नीचे कोई खुली जगह। स्कूल की बिल्डिंग तो सड़क से एकदम सटाकर बनाई गई थी – जहां कार और ट्रकों की भीड़ लगी रहती है। प्रयोग करने वाले विद्यार्थियों के लिए कोई जगह थी ही नहीं।

ज़ाहिर है प्रकाश के प्रयोगों की योजना काफी मुसीबत में पड़ गई। पर हम हार मानने वालों में से तो हैं नहीं। हमने तय किया कि लैंस वाले प्रयोग न हों तो कोई बात नहीं, हम बच्चों से पिनहोल कैमेरा ज़रूर बनवाएंगे। सो मैंने काला कागज़, बटर पेपर, सेलो टेप, कैंची आदि सामान अलग-अलग समूहों में बांट दिया।

बच्चों ने पिनहोल कैमेरे के बारे में हाल ही में कक्षा में पढ़ा था। अतः सभी को इसके बारे में अच्छी तरह याद था। ब्लैक बोर्ड पर चित्र बनाने को कहा तो बिल्कुल सही चित्र बना दिया। और बिंब क्यों और कैसे दिखेगा इसका सिद्धांत भी एक तोते की तरह झट से सुना दिया। पर हाथ से पिनहोल कैमेरा बनाते समय काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा था। कुछ बच्चों को यह समझ नहीं आ रहा था कि बटर पेपर किस तरह लगाना है। किसी ने तो बटर पेपर पर ही छेद बना दिया। जिन बच्चों का डिब्बा सही बना था उन्होंने पिनहोल का छेद इतना बड़ा बना दिया कि कोई बिम्ब ही नहीं बन पा रहा था। इस बीच जब मैंने आयोजकों से मोमबत्ती के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि मोमबत्ती तो है नहीं, ट्यूब लाईट को ही प्रकाश स्रोत की तरह इस्तेमाल कर लीजिए। यानी कि अब कोई भी विद्यार्थी जांच भी नहीं कर सकता था कि उनका पिनहोल कैमेरा ठीक बना है कि नहीं, या कि उसमें बिंब दरअसल दिखता कैसा है।

वैसे मुझे गुमान था कि इस तरह की दिक्कतें आ सकती हैं, इसलिए मैंने कुछ अन्य प्रयोगों के बारे में भी सोच रखा था।

अम्ल और क्षार

मेरे पास अम्ल और क्षार पाठ के प्रयोगों से संबंधित कुछ सामग्री थी। मैंने बड़े इत्मीनान के साथ बच्चों को इमली, नींबू, नमक का अम्ल और साबुन, कास्टिक सोडा आदि के घोल थमा दिए।

कास्टिक सोडा का घोल बनाते समय टेस्ट ट्यूब बहुत गर्म हो गई और मेरी मदद के लिए आए विज्ञान शिक्षक का हाथ जल गया। बच्चों को मैंने लाल और नीला लिटमस भी थमा दिया और दिए गए घोल अम्लीय हैं या क्षारीय यह पता कर अपने अवलोकन नोटबुक में लिखने के लिए कहा।

थोड़ी देर बाद जब सभी अवलोकन ब्लैक बोर्ड पर उतार रहा था तो मैं भौंचक्क रह गया। कुछ बच्चों ने तो

पानी का परीक्षण कर अपने अवलोकन व तालिका के आधार पर निष्कर्ष भी निकाल लिए थे। 'जो चीज़ अम्लीय या क्षारीय नहीं है उससे नीला लिटमस लाल हो जाता है।' अब उनको कैसे समझाएं कि नल का पानी जो नगर पालिका के क्लोरीनेशन प्लांट से होकर आता है, आसुत जल नहीं है।

चर्चा के दौरान किसी ने सुझाव दिया – नल का पानी शायद 'अशुद्ध' है; हो सकता है बिसलरी के पानी से 'अच्छे/ठीक' परिणाम आ जाएं। उपस्थित शिक्षकों में से दो शिक्षक नज़दीक के होटल से बिसलरी की बोतल लाने के लिए चल दिए। वो शिक्षक गए तो ऐसे गए कि कार्यक्रम खत्म होने तक भी नहीं लौटे।

घरेलू सामान से प्रयोग

अब हम घरेलू चीज़ों में से कौन-सी चीज़ें सूचक या इंडीकेटर की तरह इस्तेमाल की जा सकती हैं इसके बारे में चर्चा कर रहे थे। मैंने आयोजकों से कुछ फूल लाने के लिए कहा। जल्दबाज़ी में 'रंगीन फूल चाहिए' यह बताना भूल गया था। नतीजा यह हुआ कि कोई शिक्षक पूजा में चढ़ाई जाने वाली फूल की पुड़िया ले आया। इस पुड़िया में थे बहुत सारे सफेद फूल! अब क्या करें?

इतने में मेरी नज़र ब्लैक बोर्ड के पीछे छिपाकर रखे एक गुलदस्ते पर पड़ी। यह शायद इस प्रोग्राम के बाद मुझे देने के लिए लाया गया था। मैंने उसमें से सभी रंगीन फूल निकाल लिए। दुर्भाग्यवश वे सभी गुलाब के फूल थे। इनसे प्रयोग करने पर बच्चों ने अपनी नोट बुक में लिखा – फूलों को रगड़कर बने कागज़ पर अम्लीय और क्षारीय घोल का कोई असर नहीं होता।

प्रयोगों की इन 'सफलताओं' से प्रेरित होकर एक शिक्षक ने यह बताना शुरू किया कि कक्षा में उन्होंने कौन - कौन से प्रयोग कर के दिखाए हैं। उसमें से एक था 'प्रकाश का पृथक्करण' जो

घोल का नाम	लाल लिटमस	नीला लिटमस
नींबू का रस	कोई असर नहीं	लाल
इमली का घोल	कोई असर नहीं	लाल
साबुन का पानी	नीला	कोई असर नहीं
नल का पानी	कोई असर नहीं	लाल

प्रिज़्म के साथ किया जाता है। बच्चों ने यह तो मालूम कर लिया था कि प्रकाश सात रंगों से बनता है। सवाल यह उभर कर आया कि क्या सात रंग मिलाने से सफेद प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है? बच्चों के पास जो रंग थे उनसे उन्होंने सात रंग के त्रिकोण आकार के कागज़ रंग दिए। मेरी थैली से उन्हें एक लट्टू मिला। इस लट्टू की ऊपरी सतह समतल थी। उस पर ये कागज़ चिपका दिए गए और लट्टू को ज़ोर से घुमाया— और सभी सात रंग एक-दूसरे में घुल गए और उसमें से उभरकर आया अच्छा खासा गाढ़ा धूसर (ग्रे) रंग। अब समस्या यह थी कि उन्हें यह कैसे समझाएं कि हर रंग का त्रिकोण समान साईज़ का नहीं होना चाहिए। रंगों के प्रकीर्णन (डिस्परशन), प्रकाश तरंगों की संकल्पना आदि पर कक्षा में अभी तक कोई चर्चा नहीं हुई थी।

मैं जो कुछ करवा सका था और जो मेरी मूल योजना थी, उसमें अब तक काफी फासला आ चुका था। जिन प्रयोगों को मैं आसान मानकर चल रहा था उन्हें इस तीसरी मंज़िल वाली स्कूल में करवा पाना कठिन था। कुछ समस्याएं मेरी तैयारी की कमी और सहयोगी शिक्षकों को स्पष्ट निर्देश न दे पाने की वजह से भी आई थीं।

खैर, साढ़े बारह बज चुके थे, शायद भोजन का वक्त हो चुका था, या अगले वक्ता आ चुके थे। आयोजकों ने आंखों-ही-आंखों में इशारे करना शुरू कर दिया था। और इस तरह मेरा बच्चों को प्रयोग के द्वारा विज्ञान पढ़ाने का कार्यक्रम 'सफलता पूर्वक' संपन्न हुआ।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर हैं, बंबई में रहते हैं। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से सक्रिय जुड़ाव रहा है।

चित्र: अशोक चंचल: अशोक चंचल शौकिया चित्रकार हैं, भोपाल में रहते हैं।

मौसम बदल गया है!!

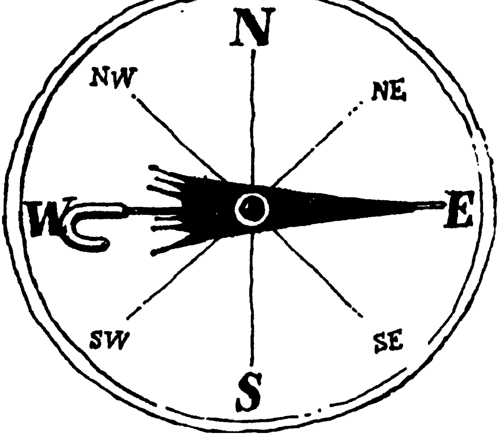

संदर्भ सदस्यता की दरें इस प्रकार हैं:

सदस्यता शुल्क	एक साल	दा साल	तान साल
व्यक्तिगत/स्कूल	75 रुपए	140 रुपए	200 रुपए
अन्य संस्थाएं	150 रुपए	280 रुपए	350 रुपए

संदर्भ की आजीवन सदस्यता भी उपलब्ध है:

आजीवन सदस्यता	शुल्क
व्यक्तिगत	1000 रुपए
संस्थागत	2000 रुपए

संदर्भ का सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं।

चेक भेजते समय 25 रुपए अतिरिक्त भेजिए।

संपर्क करें: **एकलव्य**
ई–7/एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म.प्र
पिन: 462016
फोन: 0755 – 2463380, 2464824
ई मेल: eklavyamp@mantrafreenet.com

क्या अंडा सांस लेता है?

के. आर. शर्मा

अंडे के भीतर 21 दिनों तक पलने वाला चूज़ा आखिर सांस कैसे लेता है? क्या अंडे के कड़े खोल में छिपा है वह नाजुक राज़?

हाल ही में एक बच्चे ने मुझसे पूछा कि अंडे में चूज़े को श्वसन के लिए ऑक्सीजन की ज़रूरत भी होती होगी, यह ऑक्सीजन उसको कहां से और कैसे मिलती है? इस सवाल को लेकर जब थोड़ा सोचा और किताबों को उल्टा-पल्टा तो काफी रोचक जानकारियां हाथ लगीं।

वास्तव में अंडे की अपनी एक दुनिया होती है। इसमें भीतर पलने वाले चूज़े के लिए भोजन की व्यवस्था तो होती ही है, साथ ही सुरक्षा के इंतज़ामात भी होते हैं। लेकिन अंडे के भीतर ऑक्सीजन का भंडार नहीं होता।

अंडों के साथ एक और खासियत जुड़ी है कि इनमें भ्रूण के विकास के लिए एक विशेष तापक्रम की ज़रूरत होती है। यही वजह है कि पक्षी अपने अंडों को सेने के दौरान अपने शरीर की गर्मी देते हैं। कई मुर्गी पालन केन्द्रों में जहां पर सैकड़ों की संख्या में अंडों में से चूज़े निकालने का कारोबार होता है, वहां अंडे सेने के लिए मुर्गी को ज़हमत नहीं उठानी पड़ती बल्कि इंक्यूबेटर का उपयोग किया जाता है।

वैसे अंडे में कोई ऐसा अंग या तंत्र तो नहीं दिखता जिसके माध्यम से भीतर का भ्रूण सांस ले सके। अंडे के कड़े बाहरी खोल में ही वह राज़ छिपा है। अंडे का कड़ा खोल जो अंदर के भ्रूण और उसके भोजन को बाहरी खतरों से सुरक्षा प्रदान करता है वह हवा के लिए पारगम्य होता है। सरसरी तौर पर देखने पर अंडों का बाहरी आवरण चिकना व कड़ा नज़र आता है, लेकिन इस पर हज़ारों की तादाद में सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इन सूक्ष्म छिद्रों के ज़रिए ही भ्रूण श्वसन के लिए हवा लेता है और छोड़ता है। यदि अंडे के खोल पर ग्रीज़ या कोई क्रीम चुपड़कर उन छिद्रों को बंद कर दिया जाए तो भ्रूण का विकास नहीं हो पाएगा।

अंडे के भीतर क्या है?

चलिए सबसे पहले मुर्गी के अंडे को खोलकर देखा जाए कि आखिर

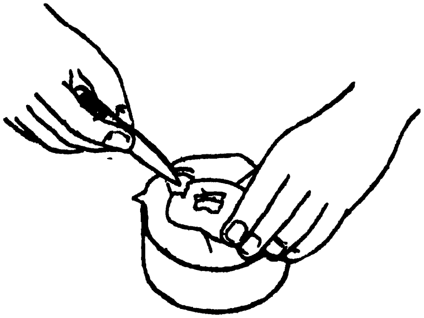

किसी कटोरी में रेत, मिट्टी या पुआल लेकर उसमें अंडा इस तरह रखना है कि अंडा लुढ़कने न पाए। अब अंडे में छेद करने की कोशिश कीजिए।

इसके अंदर ऐसा क्या है?

मुर्गी के अंडे के अध्ययन के लिए उसे खोलकर देखना होगा। एक निषेचित अंडे को आड़ा लिटाकर उसको किसी नुकीली चीज़ मसलन चिमटी या कील से धीरे-धीरे ठोककर खोल में छेद कीजिए। इस तरह से झरोखा बन जाने के बाद लैंस से अंडे के भीतर देखिए।

अंडे में एक तो तरल-सा पारदर्शक पदार्थ भरा होता है। यह पारदर्शक तरल पदार्थ एलब्यूमिन है। एलब्यूमिन भ्रूण को बाहरी झटकों से बचाता है और सुरक्षा प्रदान करता है। एलब्यूमिन एक तरह का प्रोटीन है जो अंडे में पल रहे भ्रूण का पोषण नहीं करता है, बल्कि उसको सुरक्षा प्रदान करता है। इसमें काफी मात्रा में पानी होता है और गर्म करने पर यह ठोस में

बदल जाता है। इस तरल के साथ ही पीले रंग की एक गोलाकार रचना भी दिखाई देती है। इसे योक (Yolk) कहते हैं। हम उबले अंडे को काटकर इन दोनों हिस्सों को आसानी से देख सकते हैं। आप योक को थोड़ा और गौर से देखेंगे तो योक पर एक सफेद रंग का धब्बा-सा दिखेगा, दरअसल यही भ्रूण है और इसी से चूज़ा बनता है।

अंडे में योक का काफी अहम रोल है। योक में प्रोटीन, चर्बी, विटामिन और लवण जैसे कई प्रकार के पोषक पदार्थ भरे होते हैं। दरअसल योक ही अंडे में विकसित हो रहे भ्रूण के लिए पोषण उपलब्ध करवाता है। अलग-अलग जंतुओं के अंडों में योक की मात्रा कम-ज़्यादा होती है। वे जंतु जो बच्चों को पैदा करते हैं उनके अंडों में योक की मात्रा काफी कम होती है। वहीं पक्षियों के अंडों में एक लंबे समय तक भ्रूण अंडे के भीतर पनपता है तो उसके पोषण की व्यवस्था तो होनी चाहिए। इस लिहाज़ से मुर्गी के अंडे में योक इतनी मात्रा में होता है कि अंडे में से चूज़ा बाहर निकलने तक उसका पोषण हो सके।

जब हम अंडे को फोड़कर उसका अध्ययन कर रहे थे तब एक बच्ची ने सवाल पूछा कि आखिर इस अंडे में ऐसी क्या व्यवस्था है कि इसके अंदर की चीज़ें एक खास स्थिति में टिकी रहती हैं? वास्तव में अंडे में अंदर योक को बांध कर रखने वाली दो सफेद मुलायम ऐंठी हुई रस्सी जैसी रचनाएं होती हैं। इनको 'चेलेजा' कहा जाता है और ये रचनाएं अंडे

अंडे की भीतरी बनावट

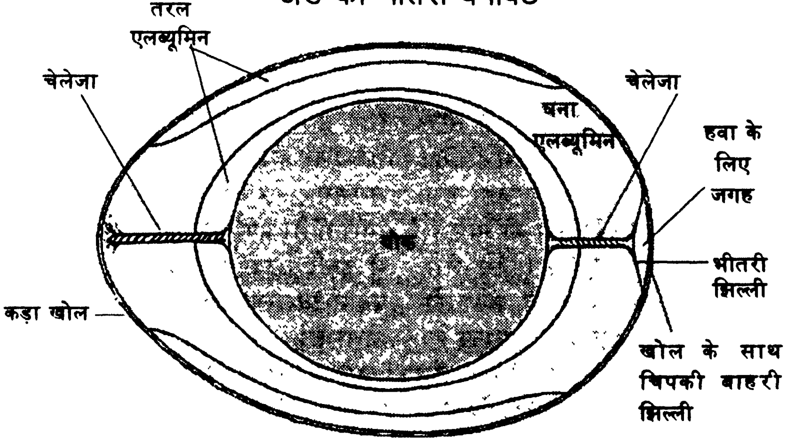

में मौजूद चीज़ों को साधे हुए रखती हैं। देखिए चित्र।

हवा की थैली

कवच के अंदर सटी हुई एक सफेद रंग की झिल्ली होती है। पहली नज़र में यह झिल्ली एक ही लगती है लेकिन थोड़ा गौर से देखने पर समझ में आता है कि यहां दो झिल्लियां आपस में चिपकी हुई हैं। इन्हें हम बाहरी झिल्ली और भीतरी झिल्ली भी कह सकते हैं।

अंडे के चौड़े सिरे की ओर हवा की थैली होती है। इसी थैली के माध्यम से अंडे के भीतर विकसित हो रहे भ्रूण को श्वसन के लिए ऑक्सीजन मिलती है। यदि हम मुर्गी के द्वारा सेए जा रहे अंडे को फोड़कर देखें तो चौड़े सिरे पर इस हवा की थैली की झिल्ली पर काफी सारी खून की नलियां फैली दिखती हैं। ज़ाहिर है कि भ्रूण इन नलियों के माध्यम से श्वसन के लिए ऑक्सीजन लेता है और कार्बन डाइ ऑक्साइड छोड़ता है।

यह हवा की थैली बाहरी और भीतरी झिल्ली के बीच होती है। दरअसल यही वो स्थान है जहां हम भीतरी और बाहरी झिल्ली को स्पष्टतः अलग-अलग देख पाते हैं। जैसे-जैसे अंडा पुराना होता जाता है, हवा की थैली का आकार भी बढ़ता जाता है।

यह तो हम जानते ही हैं कि अंडे के ऊपर का कड़ा आवरण कैल्शियम कार्बोनेट का बना होता है। लेकिन रोज़ाना अंडे देने वाली मुर्गियां या नियमितता से अंडे देने वाले अन्य पंछी भी इतने सारे कैल्शियम कार्बोनेट की व्यवस्था कैसे करते होंगे, यह काफी रोचक पहलू है। इस विषय पर रोचक जानकारी के लिए देखिए बाद में दिया गया बॉक्स।

अंडे में छेद – हवा की आवा-जाही

यह देखा गया है कि जो जंतु ज़मीन पर अंडे देते हैं उनके अंडों का कवच कठोर होता है। जहां यह कवच बाहरी खतरों से सुरक्षा प्रदान करता है वहीं इसी के माध्यम से हवा का आना-जाना संभव हो पाता है। इस कवच में खूब सारे सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इनकी संख्या लगभग दस हज़ार होती हैं। और प्रत्येक छिद्र का साईज़ लगभग 0.017 मिमी. होता है। सामान्यतः अंडे के कवच का क्षेत्रफल लगभग 70 वर्ग सेंटीमीटर होता है इसलिए उस पर प्रति वर्ग मिलीमीटर पर 1.5 छिद्र पाए जाते हैं। इन सब छिद्रों को मिलाकर हवा की आवा-जाही के लिए लगभग 2-3 वर्ग मिलीमीटर क्षेत्रफल मिलता है। भ्रूण और बाहरी वातावरण में इन्हीं छिद्रों से गैसों का आदान-प्रदान विसरण (Diffusion) के मार्फत होता है।

अब हम अपने मूल सवाल पर आ जाते हैं। आखिर हवा इन छेदों में से

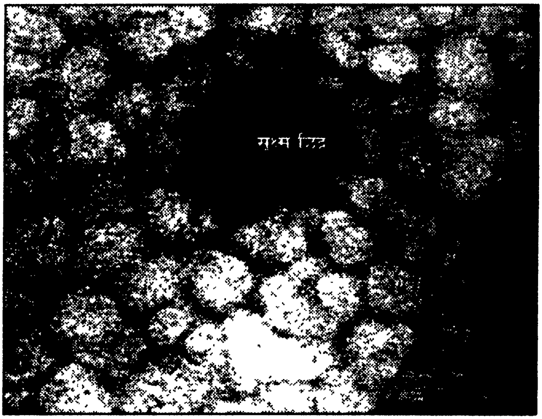

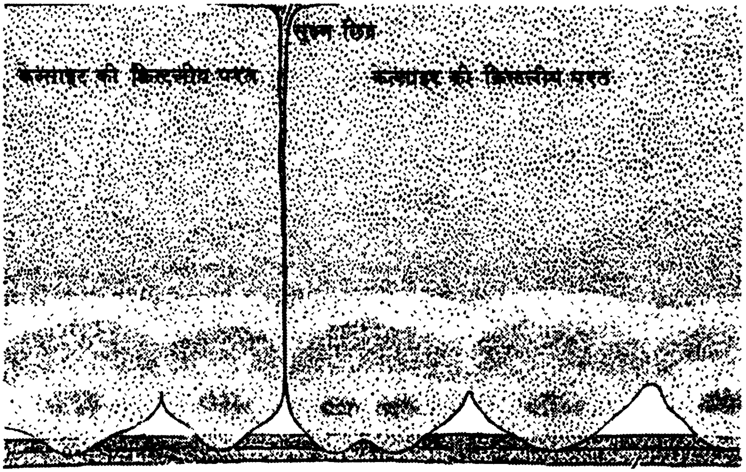

ऊपर: अंडे के खोल का एक्स रे माइक्रोग्राफ, जिसमें कैल्शियम कार्बोनेट का क्रिस्टलीय रूप – केल्साइट दिखाई दे रहा है। चित्र में बीच के हिस्से में गहरे रंग का धब्बा सूक्ष्म छिद्र है जिससे होकर वायुमंडलीय ऑक्सीजन अंडे के भीतर प्रवेश करती है, और भीतर की कार्बन डाइ ऑक्साइड बाहर निकलती है। इस छिद्र का व्यास लगभग 0.017 मि. मी. होता है।
नीचे: अंडे के खोल की खड़ी काट दिखाई गई है। इसमें केल्साइट की परत के अलावा केल्साइट के क्रिस्टलों के बीच बना सूक्ष्म छिद्र दिखाई दे रहा है। चित्र में नीचे की ओर अंडे के कवच की अंदरुनी रचनाएं दिख रही हैं जो दोनों झिल्लियों को पकड़े रहती हैं।

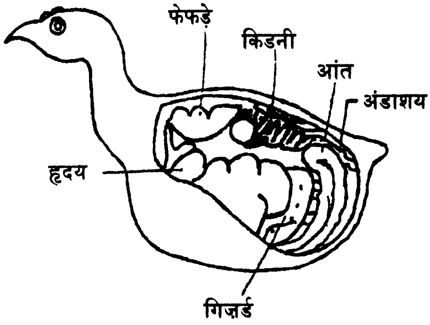

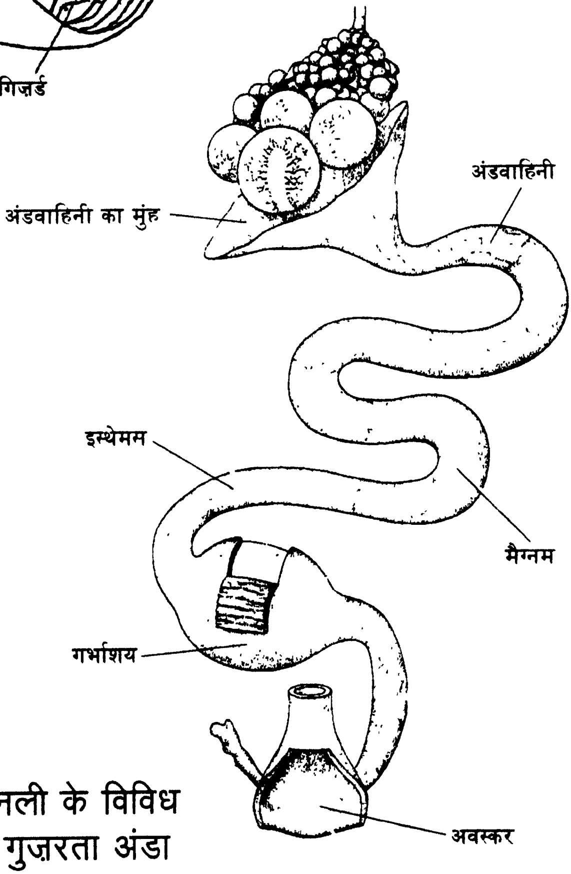

मुर्गी की प्रजनन नली के विविध हिस्सों से होकर गुज़रता अंडा

अंदर कैसे जाती है? जैसा कि जानते हैं कोई भी गैस अधिक सान्द्रता से कम सान्द्रता की ओर विसरित होती है। मतलब यह कि अंडे के भीतर ऑक्सीजन की सांद्रता कम होगी तभी इन छिद्रों के माध्यम से ऑक्सीजन अंदर जा सकती है। यानी जब चूज़ा ऑक्सीजन ग्रहण करता है तो बाहर से हवा अंदर जाती है। और इस प्रकार खून की नलियों में बह रहा खून ऑक्सीजन ग्रहण कर लेता है, और कार्बन डाइऑक्साइड त्याग देता है।

ऑक्सीजन की खपत

अंडे में जैसे-जैसे चूज़े का विकास होता है वैसे-वैसे ऑक्सीजन की खपत बढ़ती जाती है और चूज़ा कार्बन डाइ ऑक्साइड भी ज़्यादा छोड़ता है। चूंकि अंडे के भीतर हवा की थैली में कार्बन डाइ ऑक्साइड का प्रतिशत चूज़े के विकास के साथ कम होता जाता है – इसलिए विसरण की दर भी बढ़ती जाती है। यानी अंडे के खोल में से इन गैसों का आदान-प्रदान तेज़ी से होने लगता है। अंडे से चूज़े के बाहर आने के लगभग 28 घंटे पहले चूज़ा अंडे के भीतर मौजूद हवा की थैली को फाड़ देता है और वो फेफड़ों से श्वसन करना शुरू कर देता है। इस समय तक हवा की यह थैली धीरे-धीरे बढ़ते हुए लगभग 10 घन सें. मी. तक पहुंच गई होती है।

ऊंचाई पर जहां ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है वहां भ्रूण की

- **अंडा बनने की प्रक्रिया:** अंडे के बीच का पूरा पीला भाग एक अंडाणु होता है, यानी अंडाशय से बाहर निकलते समय यह पीला हिस्सा पूरी तरह बन चुका होता है। नया जीवन बनने की प्रक्रिया (निषेचन) तभी सफल होती है जब अंडाणु अंडाशय से बाहर निकलते ही शुक्राणु से मिल जाए। ऐसी स्थिति में भ्रूण का निर्माण होता है। यदि निषेचन न हो पाए तब भी अंडाणु अपना सफर पूरा करके मुर्गी के शरीर से बाहर निकल जाता है।

अंडाशय से बाहर निकला अंडाणु जब निषेचित या अनिषेचित रूप में अंडवाहिनी में से गुज़रता है तो मेग्नम तक पहुंचते-पहुंचते उस पीले हिस्से पर रंगहीन एलब्यूमिन (जो अंडा उबालने पर सफेद हो जाता है) की परत चढ़ती है। अंडवाहिनी में प्रवेश करने के लगभग तीन घंटे बाद अंडाणु मैग्नम तक पहुंचता है। इसके बाद अंडाणु लगभग सवा घंटे का समय इस्थेमस में गुज़ारता है। यहां इस पर दो झिल्लियां चढ़ती हैं। बाद में यही दो झिल्लियां भ्रूण तक हवा पहुंचाने में मददगार साबित होती हैं।

अंडा अपने सफर का सबसे बड़ा हिस्सा गर्भाशय में गुज़ारता है तकरीबन 20-21 घंटे। यहां अंडे का बाहरी कड़ा आवरण तैयार होता है तथा कुछ अन्य परिवर्तन भी होते हैं। पूर्ण रूप से तैयार अंडा मुर्गी के प्रजनन छिद्र या अवस्कर से बाहर निकलता है।

ऑक्सीजन की पूर्ति काफी कठिनाई भरा काम होता है। ऐसी समस्या कैलिफोर्निया के व्हाईट रिसर्च स्टेशन (समुद्र सतह से 3800 मीटर ऊंचाई पर) में देखी गई। सफेद मुर्गी पर बहुत साल तक किए गए शोध से यह देखा गया कि शुरुआत में जब वहां पर मुर्गी अंडों को सेती थी तो उनमें से सिर्फ 16 फीसदी अंडों में ही चूज़े बनते थे। जबकि इन्हीं अंडों को अगर समुद्र की सतह पर सेया जाए तो 90फीसदी अंडों में से चूज़े निकलते हैं। लेकिन इस ऊंचाई पर भी जैसे-जैसे परिवेश के साथ उनका अनुकूलन होता गया अंडों में से बच्चे निकलने की दर में बढ़ोतरी हुई। आठ पीढ़ी के बाद यह दर 16 से बढ़कर 60 प्रतिशत तक पहुंच गई।

उल्लेखनीय घटना ये है कि वायु के दबाव में कमी के साथ-साथ इन अंडों के गैस के विसरण सूचकांक (Diffusion coefficient) में बढ़ोतरी होती है। 3800 मीटर की ऊंचाई पर गैस विसरण सूचकांक में 1.5 गुना बढ़ोतरी होती है। जिससे कम वातावरणीय दबाव के बावजूद भ्रूण

मुर्गी द्वारा 21 दिनों तक अंडे को सेने के दौरान ऑक्सीजन और कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा में आए उतार–चढ़ाव

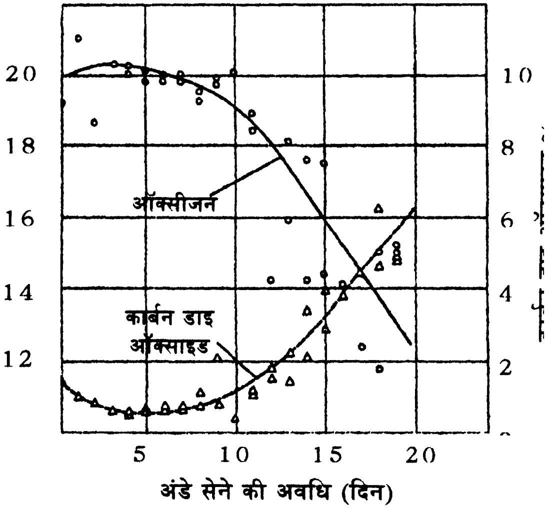

कैल्शियम आए कहां से?

एक सामान्य अंडे के खोल का भार लगभग 5 ग्राम का होता है। इसे बनाने के लिए वज़न के हिसाब से 2 ग्राम कैल्शियम की ज़रूरत होती है। मुर्गी के गर्भाशय में कैल्शियम कार्बोनेट का स्राव करने वाली ग्रंथियां होती हैं जो अंडे के खोल को बनाने के लिए ज़रूरी कैल्शियम कार्बोनेट मुहैया करवाती हैं। इन ग्रंथियों तक कैल्शियम पहुंचाने का रास्ता है खून। मुर्गी के खून में किसी भी समय औसतन 25 मिलीग्राम कैल्शियम मौजूद होता है। जब अंडे का आवरण बनने की प्रक्रिया पूरे शबाब पर हो तब 25 मिलीग्राम कैल्शियम लगभग हर बारह मिनट में खून से निकाल लिया जाता है (यानी 125 मिलीग्राम कैल्शियम/घंटा)।

कड़ा आवरण बनाने के लिए कैल्शियम तो खून से लिया जाता है लेकिन मुर्गी को कैल्शियम तो 'भोजन' के मार्फत ही मिलता है। मुर्गियों पर किए गए प्रयोगों से पता चलता है कि जब अंडे का खोल बन रहा हो उस समय मुर्गी की आंत तेज़ी से कैल्शियम का अवशोषण कर पाने में असमर्थ रहती है। भले ही मुर्गी के भोजन में ढेर सारा कैल्शियम मौजूद हो, आंत कैल्शियम ग्रंथियों की मांग के अनुरूप कैल्शियम का अवशोषण नहीं कर पाती। ऐसे समय कैल्शियम ग्रंथियों को कैल्शियम उपलब्ध करवाने का काम मुर्गी की हड्डियां करती हैं।

कई प्रयोगों से यह भी पता चला है कि यदि मुर्गी को कम कैल्शियम वाली खुराक दी जाती रही तो कुछ समय तो हड्डियों से कैल्शियम की पूर्ति होती रहती है लेकिन बाद में हड्डियां भी कैल्शियम ग्रंथियों को कैल्शियम की पूर्ति नहीं करवा पाती, फलस्वरूप अंडे का खोल काफी पतला हो जाता है। कम कैल्शियम वाला ऐसा पोषण बरकरार रहे तो कुछ समय बाद मुर्गी, बिना कठोर कवच के अंडे देने लगती है; और उसके बाद अंडे देने की प्रक्रिया ही पूर्णत: रुक जाती है।

को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन मिल पाती है। गैसों के विसरण सूचकांक में बढ़ोतरी का प्रभाव जलवाष्प के ऊपर भी होता है, और इसके कारण अंडे के सूख जाने का खतरा बढ़ जाता है।

जो पक्षी बहुत ऊंचाई पर अंडे देते है उनके अंडे का आकार तुलनात्मक रूप से छोटा होता है, और उनकी अंडा सेने की अवधि भी समुद्र सतह की अपेक्षा लंबी होती है। एक और बात देखी गई कि ऊंचाई पर पक्षियों के अंडों के कवच में छेदों की संख्या तुलनात्मक रूप से कम होती है। गैस विसरण सूचकांक में बढ़ोतरी के साथ

अंडे के वज़न में अंतर

निषेषित यानी फर्टिलाइज़्ड अंडा बाहर निकलने के बाद मुर्गी उसे 21 दिन तक सेती है। एक सवाल यह भी है कि इन 21 दिनों के दौरान अंडे का वज़न उतना ही बना रहता है या फिर घटता-बढ़ता है?

इस संबंध में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि जिस निषेचित अंडे का वज़न शुरुआत में 60 ग्राम था 21 वें दिन तौलने पर उसका वज़न 51 ग्राम ही बचा था, यानी इन इक्कीस दिनों में 9 ग्राम की कमी आई।

इस अवधि में अंडे ने लगभग 6 लीटर ऑक्सीजन अवशोषित की और 4.5 लीटर कार्बन डाइ ऑक्साइड बाहर निकाली। चूंकि कार्बन डाइ ऑक्साइड ऑक्सीजन की तुलना में भारी होती है यानी उसका घनत्व ज़्यादा होता है इसलिए वज़न की दृष्टि से देखें तो अंडे ने 8.6 ग्राम ऑक्सीजन सोखी और 8.8 ग्राम कार्बन डाइ ऑक्साइड छोड़ी। इन दो गैसों के अलावा इन इक्कीस दिनों में अंडे में से 11 लीटर जलवाष्प बाहर निकली। जिसका कुल वज़न 8.8 ग्राम था।

अंत में जो चूज़ा बाहर निकला उसका वज़न 39 ग्राम था और शेष बचे कवच और झिल्ली का वज़न 12 ग्राम, यानी कुल मिलाकर 51 ग्राम।

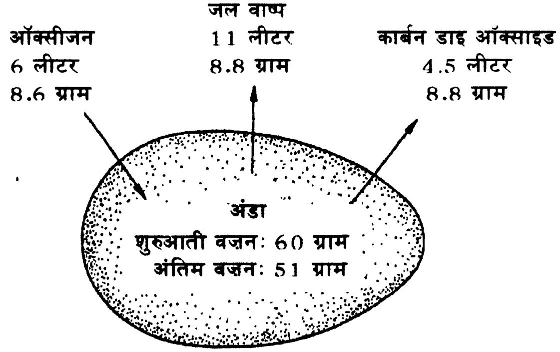

छेदों की संख्या में कमी होने के कारण अंडे के खोल में से गैसों का आना-जाना समुद्र सतह और ऊंचाई पर बराबर हो जाता है। कहने का मतलब यह है कि ऊंचाई पर अंडे में कम छेद होना एक तरह का अनुकूलन है। अगर ऐसा नहीं होता तो अंडे में से अधिकतर पानी भाप बनकर उड़ जाता और अंडे के सूखने का भय बना रहता।

अब सवाल यह उठता है कि उन पक्षियों में जो आमतौर पर ऊंचाई पर रहते हैं – क्या उनमें भी विसरण की दर यही होती है? लगभग 2800 मीटर की ऊंचाई पर रहने वाली 6 प्रजातियों के पक्षियों के अंडों के अध्ययन से यह साबित हुआ कि अधिक ऊंचाई पर निवास करने वाले पक्षियों के अंडों के कवच की गैसों के प्रति पारगम्यता कम होती है। परन्तु उनमें भी गैस विसरण सूचकांक ज़्यादा होने के कारण भ्रूण को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल जाती है। कवच की पारगम्यता कम होने के कारण अंडे के भीतर की जल वाष्प का ह्रास भी कम होता है।

यह ज़रूर कहा जा सकता है कि अधिक ऊंचाई पर एक तरफ पानी का कम नुकसान और दूसरी तरफ भ्रूण की ज़रूरत की ऑक्सीजन के बीच जैव विकास के दौरान खींचतान होती रही होगी।

के. आर. शर्मा: गुजरात के वलसाड़ ज़िले में 'आर्च' संस्था के साथ विज्ञान शिक्षण पर काम करते हैं। साथ ही विज्ञान व शिक्षा पर नियमित लेखन में रुचि।

मुर्गी के निषेचित और अनिषेचित अंडों के बारे में और विस्तृत जानकारी के लिए संदर्भ के अंक: 18 में प्रकाशित लेख 'रोशनी और मुर्गी का अंडा' देखिए।

सज़ा

वृषाली वैद्य

किशोरावस्था में बच्चे अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। उनके बहुआयामी विकास के लिए बहुत ज़रूरी है कि इस उम्र में घर पर और शाला में उन्हें इसके अनुकूल स्वतंत्र माहौल मिले, जिसमें उन्हें अपनी बात व तर्क सामने रखने, मुद्दों पर चर्चा करने, आदि का पर्याप्त मौका हो। क्योंकि अक्सर उस दौर के अनुभव व्यक्ति के जीवन व चरित्र पर एक अमिट छाप छोड़ देते हैं। इस अनुभव में ज़रूर उस छाप ने लेखिका को सवाल खड़े करने का माद्दा व ताकत दी है, परन्तु उस सबके लिए इतने अपराध बोध व शर्मिंदगी से गुज़रना ज़रूरी है क्या?

बात लगभग 1983 की है। तब मैं लड़कियों के स्कूल में कक्षा छठवीं में पढ़ती थी। उन दिनों मैं और मेरी सहेलियां छुट्टी के बाद नाटक की रिहर्सल के लिए जाते थे। उस नाटक में हम चार सहेलियां रोल कर रही थीं। हम चारों का एक अच्छा समूह बन गया था।

एक बार आधी छुट्टी के पहले वाले पीरियड में शिक्षक के न आने की वजह से कक्षा में फ्री पीरियड का माहौल था। इस फ्री पीरियड में क्या किया जाए, हम चारों सहेलियां सोच रही थीं। सोचते हुए हम लोगों के दिमाग में एक ज़ोरदार आइडिया आया – खुद की शादी के लिए निमंत्रण पत्र तैयार किया जाए। इस निमंत्रण पत्र में वधु के नाम के रूप में तो हम चारों सहेलियों के नाम लिखे जाने हैं यह तय था, लेकिन चार दूल्हों के नाम कहां से लाए जाएं? उस समय दूल्हों के नाम भी याद नहीं आ रहे थे। अब क्या किया जाए, यह सोचते हुए हमने अपनी एक सहेली के तीन चचेरे भाइयों के नाम दूल्हों के रूप में लिख डाले। इसी तरह चौथा दूल्हा भी

ढूंढ लिया गया। इतना सब करते हुए हमारे निमंत्रण पत्र का खाका मोटे तौर पर तैयार हो गया था। आमतौर पर निमंत्रण पत्र में जिन शब्दों का इस्तेमाल होता है उन्हें लिखते हुए हमें काफी मज़ा आ रहा था। 'ईश्वर की अनुकंपा से' की जगह क्या लिखा जाए? यानी किसकी अनुकंपा से, या निमंत्रण पत्र की भूमिका किस तरह लिखी जाए – ईश्वर की अनुकंपा से हमारी आठवीं कन्या का...... यहां 'आठवीं कन्या' लिखें या कुछ और.....? ऐसी कई बातों पर हमने काफी माथा-पच्ची की। निमंत्रण पत्र के नीचे यह स्पष्टः लिखा गया कि उपहार लाना न भूलें। साथ में एक फुटनोट भी दिया गया कि हमारी प्राथमिकता है 'नकदी-रोकड़ा'।

निमंत्रण पत्र में एक-एक शब्द लिखते हुए हमारा हंस-हंसकर बुरा हाल हो रहा था। आधी छुट्टी में खाना खाते समय भी निमंत्रण पत्र की बातों को याद करके हम लोग काफी देर तक हंसते रहे। खाना खाने के बाद हम लोगों ने अपनी-अपनी शादी के निमंत्रण पत्र फाड़कर फेंक दिए और इस बात को भूल भी गए।

चार-पांच दिनों के बाद हम चारों सहेलियों को मुख्य अध्यापिका ने अपने कमरे में बुलाया। हम चारों वहां पहुंची तो उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के सवाल दागा, "इन दिनों स्कूल में तुम लोगों का क्या लफड़ा चल रहा है?" यह सवाल हमारे लिए काफी अन-अपेक्षित था। हमें तो समझ में भी

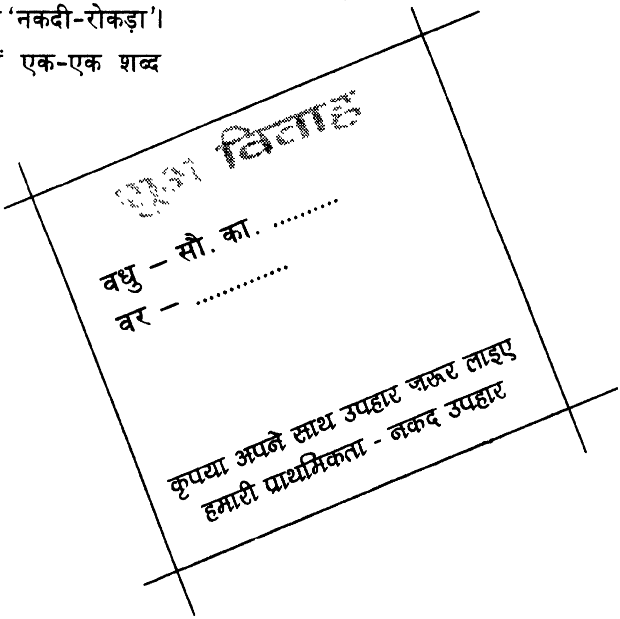

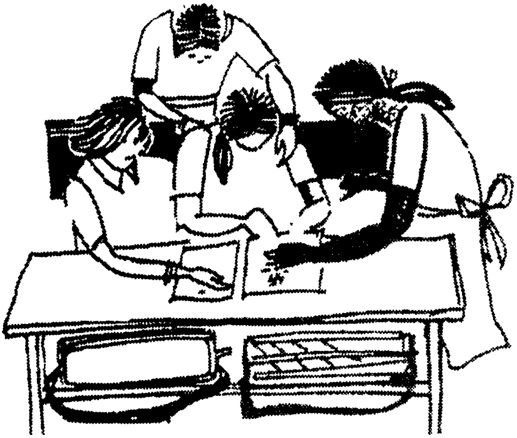

नहीं आ रहा था कि इस सवाल का क्या मतलब है! हम प्रश्नवाचक भाव से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगीं। तभी हमारे निमंत्रण पत्र के चंद टुकड़े सामने रख दिए गए। तब कहीं जाकर हमें मैडम के सवाल का मतलब समझ में आया। लेकिन हमारी गलती क्या थी यह अभी भी हमारी समझ में नहीं आ रहा था। "तुम लोगों को अपनी गलती की सज़ा ज़रूर भुगतनी पड़ेगी", मैडम ने फरमान सुनाया और वहां से चल दीं।

'ये चारों लड़कियां कक्षा में एक साथ बैठती हैं इसलिए इनके दिमाग में हमेशा 'खुराफात' पकती रहती है। ऐसा कुछ करना चाहिए कि ये चारों कक्षा में एक साथ न बैठ पाएं' शायद ऐसा ही कुछ सोचकर हमारे लिए सज़ा मुकर्रर की गई कि हमारे सेक्शन अलग-अलग कर दिए जाएं। चारों सेक्शन का नाम लिखकर हमारे सामने पर्चियां रखी गईं। हम चारों ने भारी अपमान महसूस करते हुए एक-एक पर्ची उठाई। मुझे 'क' सेक्शन मिला और मेरी सहेलियों को क्रमशः 'ख', 'ग' और 'घ' सेक्शन मिले।

इस नए सेक्शन में नई लड़कियों के साथ किस तरह तालमेल बैठाया जाए, यह समझ में नहीं आता था। हम चारों को अपने पुराने सेक्शन की, सहेलियों की याद आती थी। पढ़ाई में मन नहीं लगता था। नए सेक्शन में बैठते हुए हमेशा ऐसा लगता था कि स्कूल की हर लड़की, शिक्षिका, कर्मचारी हमारी ओर इशारा करके कह रहा है कि देखो यही हैं वो लड़कियां

जिनके सेक्शन बदले गए हैं। कभी-कभी तो कक्षा में बैठे-बैठे ही रुलाई फूट पड़ती थी। स्कूल के बरामदे में से गुज़रते हुए हम नज़रें भी नहीं उठा पाती थीं। पूरे वक्त अपमान महसूस होता था।

हम चारों सहेलियां जब भी मिलतीं तो बस यही चर्चा होती कि हमसे ऐसी क्या भारी गलती हुई है कि हमें इतनी कड़ी सज़ा दी गई है? शादी का निमंत्रण तैयार करने में काफी मज़ा आया था और उसे तैयार करते हुए हमने किसी को परेशान भी नहीं किया था। सज़ा सुनाने से पहले कम-से-कम हमसे एक बार पूछा तो होता कि हमने निमंत्रण पत्र क्यों तैयार किए थे। लेकिन हमसे तो किसी ने भी नहीं पूछा, हमारा पक्ष जानने की कोशिश ही नहीं हुई।

शिक्षक-शिक्षिका जो हमसे उम्र में काफी बड़े थे, उन्होंने निमंत्रण पत्र को लेकर जो हमारे दिलो-दिमाग में नहीं था, उसे भी अपने नज़रिए से समझ लिया था। उनके इस नज़रिए से हमारा यह खेल गुनाह दिखाई देता था। शादी के निमंत्रण पत्र को बनाते हुए मिला आनंद, मज़ा आदि उन शिक्षकों को दिखाई नहीं दिए तो इसमें हमारा क्या कसूर था। 'हमें उन लड़कों से शादियां करनी हैं, उन से अभी से कोई चक्कर-वक्कर चल रहा है.....' वगैरह बातें उन सब बड़े लोगों की खोपड़ियों में घूम रही थीं, अब ऐसे में हम छोटे क्या करें? बहुत कर तो यही सबक मिल रहा था कि आप जो भी करना चाहते हो उसे करो, लेकिन किसी भी तरह के सबूत के साथ पकड़े मत जाओ। यदि पकड़े गए तो सज़ा मिलना तय है। इस कठोर व असंवेदनशील सज़ा से यकीनी तौर पर हमने यही सबक लिया था।

***

आज उन दिनों को यादकर मैं सोचती हूं कि ऐसी स्थिति में सज़ा क्यों दी जानी चाहिए और सज़ा देने से कौन-से लक्ष्य साधे जाते हैं? आज महसूस होता है कि सज़ा पाने वाले को कुछ बातें तो स्पष्ट होनी चाहिए जिससे खुद की गलती समझ में आ जाए – अगर सचमुच में कोई गलती की हो। ऐसी हालत में यह भी ज़रूरी है कि पता चले कि आपने आखिर गलती की कहां है ताकि आप उस गलती की ज़िम्मेवारी स्वीकार कर पाएं। सिर्फ उस गलती की ही नहीं बल्कि उस गलती की वजह से जो परिणाम सामने आएंगे, उन परिणामों के लिए भी खुद की ज़िम्मेवारी को स्वीकारना होगा। गलती की वजह से जो नुकसान हुआ है उस नुकसान को पूरा करना होगा। और साथ ही दोबारा गलती न होने देने की ईमानदार कोशिश करनी

होगी। और सबसे महत्वपूर्ण बात है कि ऊपर गिनाई बातें कसूरवार को अगर न बताई जाएं तो उसके स्वभाव में जीवन भर के लिए कड़वाहट भरे बदलाव आ सकते हैं।

हम चार सहेलियों को जो सज़ा दी गई उससे कौन-से लक्ष्यों की पूर्ति हो गई थी? क्या हमें अपनी गलती का अहसास हुआ? हमारे हिसाब से तो हमने कोई गलती नहीं की थी। यह बात हम तब भी मानते थे और आज भी मानते हैं। जब हम खुद को गलत नहीं मानते तो गलती की ज़िम्मेवारी लेने का सवाल ही नहीं उठता। और यदि नुकसान की बात करें तो नुकसान तो हमारा ही हुआ है। इतनी शर्मिंदगी, शर्मसार होना, अपराध-बोध में जीना....., इतना सब तो हमारे साथ ही हुआ। अब हम किसके नुकसान की भरपाई करेंगे? और रही बात इस घटना की वजह से अपने बर्ताव में बदलाव की, तो मुझमें ऐसा बदलाव आया कि वह मेरे स्वभाव का हिस्सा ही बन गया। मैं हर स्थापित विचार के खिलाफ कुछ अलग तरह से सोचने लगी। उसके बाद तो बड़ों से, स्थापित लोगों से जहां-जहां भी सहमत नहीं होती, अपना विरोध दर्ज कर देती थी। यह बागी प्रवृत्ति हमेशा के लिए मेरे स्वभाव का हिस्सा बन गई और आज भी है।

वृषाली वैद्य: पुणे में रहती हैं। शिक्षा के विविध मुद्दों में रुचि है।
अनुवाद: माधव केलकर।

'पालक नीति' पत्रिका के सितंबर 2003 अंक से साभार।
पालक नीति पत्रिका पुणे से मराठी भाषा में प्रकाशित होती है। इसमें शिक्षा एवं सामाजिक मुद्दों पर लेख होते हैं।

राजा का मुकुट और आर्किमिडीज़ का सिद्धांत

एस. श्रीनिवासन

आर्किमिडीज़ का नाम सुनते ही उनका वह किस्सा दिमाग में कौंध जाता है जिसमें उन्हें राजा के सोने के मुकुट में मिलावट है कि नहीं, यह पता करने का तरीका टब में नहाते-नहाते अचानक सुझा और वे उसी हालत में 'यूरेका, यूरेका, ...' चिल्लाते हुए बाहर को दौड़ लिए। इस लेख में एस. श्रीनिवासन यह पता करने की कोशिश कर रहे हैं कि जो भी अन्य जानकारियां उस समय तक उपलब्ध थीं, उनको देखते हुए सोने के मुकुट में मिलावट का पता लगाने के लिए वास्तव में आर्किमिडीज़ को उनके द्वारा खोजे गए 'वस्तुओं के तैरने-डूबने के सिद्धांत' की ज़रूरत थी क्या?

इस सवाल की तह में जाते हुए श्रीनिवासन यह भी पाते हैं कि उनके कुछ और भी हमराही रहे हैं जिन्हें यूरेका, यूरेका वाले इस किस्से की तथ्य-परकता पर संशय रहा है। विज्ञान के इतिहास में इस तरह के और भी कई किस्से देखने को मिलते हैं जो अक्सर इतिहास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते, परन्तु किवदन्तियों के रूप में जनमानस में बसे रहते हैं।

आर्किमिडीज़ का जन्म 287 ईसा पूर्व सिरेक्यूज़ में हुआ था। वे एक महान वैज्ञानिक और विचारक थे। उन्हें एक महान गणितज्ञ भी कहा जाता है। अपने ज़माने में उन्हें 'उस्ताद' और 'महान रेखा शास्त्री' माना जाता था। अपने काम की बदौलत उन्हें जो ख्याति मिली उसकी चमक आज तक फीकी नहीं पड़ी है।

विज्ञान और गणित के इतिहासकार आर्किमिडीज़ को कई सारी वैज्ञानिक खोजों का श्रेय देते हैं। जैसे –

1. वृत का क्षेत्रफल और पाई का मान ज्ञात करना। उन्होंने पाई का मान, उस समय तक किए गए सभी प्रयासों से अधिक सटीकता से ज्ञात किया था।

2. वे डिफ्रेंशियल केल्क्युलस (कलन) विकसित करने के काफी करीब पहुंच चुके थे। और उन्होंने लगभग उन्हीं तरीकों का इस्तेमाल किया जो आज इंटिगरल केल्क्युलस में अपनाए जाते हैं। यानी परवलय (पैराबोला) और दीर्घवृतों जैसी ज्यामितीय आकृतियों का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए आर्किमिडीज़ उन्हें छोटे-छोटे अनंत आयतों में बांटकर, उन आयतों के क्षेत्रफल का योग कर लेते थे।

3. पेराबोला यानी परवलय का क्वाड्रेचर ज्ञात करना।

4. गोले की सतह का क्षेत्रफल व उसका आयतन ज्ञात करना। इस समस्या के उनके हैरतअंगेज़ हल का विवरण उनकी पुस्तक 'ऑन द स्फीयर एण्ड द सिलेंडर' में मिलता है।

5. सरल यांत्रिकी में उनकी महारत।

6. और वह सारा योगदान तो है ही जिसे हम आज जल-स्थैतिकी (हायड्रोस्टैटिक्स) के नाम से जानते हैं।

इन सब के अलावा और भी बहुत

सारी उपलब्धियां हैं उनकी।

उनकी इन सारी उपलब्धियों को देखकर 'राजा के मुकुट और आर्किमिडीज़' की प्रचलित कहानियों पर संदेह पैदा होता है। संदेह का कारण यह है कि आर्किमिडीज़ जैसा होशियार व्यक्ति क्यों एक ज़्यादा जटिल विधि का इस्तेमाल करेगा, जबकि उस समस्या को सुलझाने के कई आसान तरीके उपलब्ध थे। हां, यह ज़रूर हो सकता है कि गोले के आयतन और उसकी सतह के क्षेत्रफल की समस्या को सुलझाने के बाद आर्किमिडीज़ 'यूरेका, यूरेका...' यानी 'खोज लिया, खोज लिया...' चिल्लाते हुए स्नानागार से निर्वस्त्र बाहर दौड़ पड़ा हो।

मुकुट का किस्सा

ऐसा माना जाता है कि नहाने के टब में घुसते हुए आर्किमिडीज़ ने वह सिद्धांत खोज निकाला था जिसे आज हम आर्किमिडीज़ का सिद्धांत कहते हैं। उन्होंने देखा कि उनका शरीर पानी के अंदर जितना जाता है, टब में पानी का तल उतना ही बढ़ता जाता है। उसी समय राजा यह पता करने की कोशिश कर रहा था कि उसने सोने का जो मुकुट बनवाया है वह शुद्ध सोने का है या सुनार ने मुकुट में चांदी और उसकी आंखों में धूल झोंकी है। और स्वाभाविक रूप से उसने इस भारी भरकम समस्या को सुलझाने का काम अपने राज्य के सर्वश्रेष्ठ विचारक व वैज्ञानिक को सौंपा। राजा किसी ऐरे-गैरे से तो अपनी समस्या हल करवाने से रहा।

सवाल यह है कि बहु-प्रचलित कहानी के अनुसार आर्किमिडीज़ ने इस समस्या के हल के लिए 'आर्किमिडीज़ के सिद्धांत' का उपयोग कैसे किया। मगर आगे बढ़ने से पहले आइए आर्किमिडीज़ के सिद्धांत पर एक नज़र डाल लें।

आर्किमिडीज़ का सिद्धांत

आर्किमिडीज़ के सिद्धांत का आधुनिक संस्करण कहता है कि द्रव में पूरी या अधूरी डूबी किसी भी चीज़ पर एक उत्प्लावन बल लगता है और इस बल का परिमाण हटाए गए द्रव के वज़न के बराबर होता है।

इस सिद्धांत का जो आशय है उससे निम्नलिखित परिणाम मिलते हैं:

1. तैरती हुई चीज़ इसलिए तैरती है क्योंकि उस पर नीचे की ओर लगने वाला बल (यानी उसका वज़न) तथा ऊपर की ओर लगने वाला बल (उत्प्लावन बल) बराबर होते हैं। अर्थात तैरती हुई वस्तु पर लगने वाला उत्प्लावन बल, उस वस्तु के द्वारा हटाए गए द्रव के भार के बराबर होता है। लिहाज़ा कोई भी तैरती हुई चीज़ भार-रहित होती है।

2. आंशिक रूप से या पूर्णतः डूबी हुई किसी भी वस्तु का वज़न उसके 'हवाई वज़न' से कम होगा।

3. द्रव जितना ज़्यादा घना होगा, संपूर्णतः डूबी हुई वस्तु के वज़न में कमी उतनी ही अधिक होगी।

4. यदि कोई वस्तु अलग-अलग घनत्व वाले दो द्रवों में तैरती है तो ज़्यादा घने द्रव में उसका कम भाग डूबेगा। लैक्टोमीटर वगैरह इसी सिद्धांत पर काम करते हैं।

5. जब कोई वस्तु तैरती है तो वह द्रव को हटाती है; यदि उसका वज़न बढ़ा दिया जाए तो तैरते रहने के लिए उसे पहले से ज़्यादा द्रव हटाना पड़ेगा। इसीलिए जब जहाज़ में माल लादा जाता है तो वह थोड़ा और डूब जाता है।

एक तथ्य और... इसका संबंध आर्किमिडीज़ के सिद्धांत, उत्प्लावन वगैरह से नहीं है। यदि बराबर वज़न के दो ठोस टुकड़े लिए जाएं तो अधिक घने पदार्थ (जैसे सोने) से बने टुकड़े का आयतन, कम घने पदार्थ (जैसे चांदी) से बने टुकड़े से कम होगा।

पकड़ो सुनार को

सुनार की धोखाधड़ी पकड़ने के लिए आर्किमिडीज़ को मात्र इतना ही करना था कि वे विवादित मुकुट के बराबर वज़न या बराबर आयतन का शुद्ध सोने का मुकुट लेकर तुलना कर लेता। यदि सुनार ने मुकुट में चांदी (या किसी भी अन्य धातु जिसका घनत्व सोने से कम है) की मिलावट की है तो निम्नलिखित स्थितियां हो सकती हैं।

– यदि दोनों का वज़न बराबर हो तो शुद्ध सोने के मुकुट का आयतन कम होगा। दोनों मुकुटों को पानी (या किसी भी अन्य द्रव) में डुबाकर विस्थापित पानी की मात्रा पता करके दोनों के आयतन की तुलना की जा सकती है।

– यदि दोनों का आयतन बराबर हो तो मिलावटी मुकुट का वज़न कम होगा, यदि सोने में कम घनत्व की कोई धातु मिलाई गई हो।

ध्यान दें कि जांच के इन दोनों ही तरीकों में आर्किमिडीज़ के सिद्धांत का उपयोग नहीं किया गया है।

परन्तु, एक स्थिति यह भी हो सकती है कि मुकुट में कुछ पोली रचनाएं हों। जैसे हो सकता है कि राजा ने पूरी दुनिया पर अपने साम्राज्य की घोषणा करने के लिए मुकुट पर एक पृथ्वी लगवाई हो, जो अंदर से खोखली हो। इस मामले में भी आर्किमिडीज़ कुछ इस तरह से आगे बढ़ सकता है कि आर्किमिडीज़ के सिद्धांत का इस्तेमाल नहीं होगा। वह ठीक उसी आकृति का सोने का मुकुट

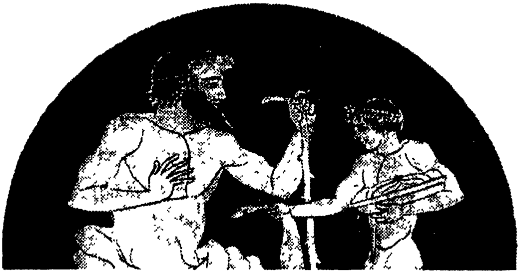

बनवाएगा। इस मुकुट का या तो वज़न सुनार द्वारा बनाए मुकुट के बराबर होगा, या फिर आयतन। उसके बाद प्रक्रिया उपरोक्त दो स्थितियों जैसी ही होगी।

यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि यदि सुनार ने मात्र चांदी की मिलावट न करके दो या तीन धातुएं मिला दी होतीं, तो क्या होता। तब वह इन धातुओं को सही मात्रा में मिलाकर मिश्रण का घनत्व सोने के बराबर ला सकता था। जैसे वह सोने में मिलवाट के लिए एक धातु ऐसी ले सकता है जिसका घनत्व सोने से कम है (जैसे चांदी या तांबा), और दूसरी धातु ऐसी ले सकता है जिसका घनत्व सोने से ज़्यादा हो, जैसे प्लेटिनम।

ऐसी स्थिति में मुकुट में मिलावट है कि नहीं यह जांचने के लिए, आर्किमिडीज़ को उस मुकुट को पिघलाकर उसका रासायनिक परीक्षण करवाना पड़ता। वैसे हम यह मानकर चल सकते हैं कि उस ज़माने में प्लेटिनम के उपयोग की संभावना न के बराबर है, क्योंकि शायद तब तक प्लेटिनम की खोज ही नहीं हुई थी।

प्रचलित किस्से

तो मिलावटी मुकुट की समस्या पर लौटें, विशेषकर ऐसे मुकुट के संदर्भ में जिसमें खोखले स्थान नहीं थे। विज्ञान की अधिकांश पाठ्य पुस्तकों और अन्य कहानियों में, हमें इसके हल का आर्किमिडीज़ द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित में से कोई एक संस्करण मिलता है।

संस्करण 1 : ''यदि सुनार ने मुकुट सोने के बजाए चांदी (कम घनत्व की धातु) का बना दिया होता तो मुकुट का वज़न कम होगा (यानी मुकुट का आयतन उतना ही होगा, परन्तु प्रति इकाई आयतन में पदार्थ की मात्रा कम होगी, इसलिए उसकी कुल मात्रा और वज़न कम होंगे)। ऐसे मुकुट को तैराने के लिए उत्प्लावन बल भी कम लगेगा। यदि इस मुकुट को एक ऐसे द्रव में डाला जाए जिसमें शुद्ध सोना डूब जाता है मगर चांदी का मुकुट तैरता रहता है तो सुनार की

धोखाधड़ी पकड़ी जाएगी।"

संस्करण 2: "कोई भी डूबी हुई वस्तु अपने आयतन के बराबर द्रव हटाती है। इसलिए मुकुट को पानी में डुबाकर उसका एकदम सही आयतन पता किया गया। ठीक इतने ही आयतन का सोने का गुटका आसानी से बनवा लिया गया। अब यदि मुकुट शुद्ध सोने का है तो उसकी संहति (द्रव्यमान) और उसके बराबर आयतन के सोने के गुटके की संहति बराबर होनी चाहिए। यदि उनकी संहति बराबर न हो, तो इसका एक ही कारण हो सकता है कि मुकुट शुद्ध सोने का नहीं है। जब मुकुट और सोने के गुटके को तराज़ू के दो पलड़ों में रखा गया तो उनकी संहति बराबर नहीं निकली। इस प्रमाण के समक्ष सुनार ने अपना अपराध कबूल कर लिया।"

ज़ाहिर है कि संस्करण 2 में तो आर्किमिडीज़ के सिद्धांत का उपयोग ही नहीं हुआ है। संस्करण 1 की दिक्कत यह है कि इसमें मानकर चला गया है कि सुनार इतना बेवकूफ था कि उसने मान लिया कि वह सोने की बजाय शुद्ध चांदी का मुकुट बना देगा और किसी को पता तक नहीं चलेगा।

संस्करण 3: आगे दिया गया पूरा विवरण 'ए कम्प्लीट कोर्स इन फिज़िक्स (खण्ड 2)' लेखक भटनागर (पीतांबर पब्लिशिंग, दिल्ली, 2002) से लिया गया है।

"एक मुकुट है जिसका वज़न हवा में 0.434 किलोग्राम और पानी में पूरी तरह डुबाए जाने पर 0.406 किलोग्राम है। यह पता करने के लिए कि मुकुट शुद्ध सोने का है या नहीं, हम यह मानकर चलेंगे कि शुद्ध सोने का घनत्व 19.3 ग्राम/घन सेंटीमीटर है। आगे का हल इस प्रकार होगा।

हल:

मुकुट के पदार्थ का घनत्व निम्नलिखित सूत्र से निकाला जा सकता है:

मुकुट का घनत्व

= हवा में मुकुट का वज़न/उसका आयतन

= हवा में मुकुट का वज़न/मुकुट द्वारा हटाए गए पानी का आयतन

= हवा में मुकुट का वज़न/(पानी में डालने पर मुकुट के वज़न में कमी/पानी का घनत्व)

= हवा में मुकुट का वज़न/पानी में डालने पर मुकुट के वज़न में कमी

(क्योंकि पानी का घनत्व 1 ग्राम प्रति घन सेमी है)

= 0.434/(0.434–0.406)

= 15.5 ग्राम/घन से.मी.

यानी मुकुट शुद्ध सोने का नहीं है।"

टिप्पणी: मुकुट में उपस्थित संदिग्ध पदार्थ का घनत्व पता करने के लिए आर्किमिडीज़ के सिद्धांत या पानी में डुबाने पर वज़न में कमी वगैरह का सहारा लेने की कोई ज़रूरत नहीं है। मगर, जैसे कि बाद में चर्चा की गई है, शायद यही तरीका आर्किमिडीज़ के सिद्धांत के उपयोग के सबसे करीब आता है।

सेंसिटिवीटी (सुग्राहिता) का सवाल

अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि मुकुटों का वज़न बराबर था। इसलिए समस्या यह है कि उनके द्वारा हटाए गए पानी के आयतनों का अंतर पता करना। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, आयतनों में अंतर नापकर सच्चाई का पता करने में आर्किमिडीज़ का सिद्धांत किसी काम नहीं आता है। बहरहाल, यह देखते हैं कि यदि हम सच्चाई का पता करने के लिए आयतनों में अंतर का सहारा लें तो मापन की तकनीक में कितनी सटीकता की ज़रूरत होगी।

'ए कम्प्लीट कोर्स इन फिज़िक्स' के उपरोक्त उदाहरण के संदर्भ में यह सवाल पूछना ज़रूरी है कि पानी में डुबाने पर वज़न में आई कमी को किस विधि से नापा गया होगा। हटाए गए पानी का आयतन निकालकर, उसमें पानी के घनत्व का गुणा करके वज़न में कमी का पता किया गया होगा? या फिर एक कमानीदार तुला या सादी तराज़ू के ज़रिए सीधे ही वज़न में कमी निकाली गई होगी?

अगर पहली वाली विधि अपनाई गई हो, तो जैसा कि नीचे की चर्चा से स्पष्ट होगा, यह तरीका मुकुट में मिलावट पता करने के लिए पर्याप्त संवेदनशील नहीं है। दूसरा तरीका ही आर्किमिडीज़ के सिद्धांत को इस्तेमाल करने का अर्थपूर्ण रास्ता है। परन्तु उसके लिए ज़रूरी है कि आपके पास संवेदनशील तुला हो जो वज़न में अंतर को नाप सके।

बराबर वज़न रखते हुए आयतन में अंतर मापना:

उपरोक्त उदाहरण को ही लेते हैं। इस मुकुट का हवा में वज़न 0.434 किलोग्राम है।

अगर यह मुकुट शुद्ध सोने का हो तो इसका आयतन 0.434/19.3 = 22.48 घन से.मी. होगा।

यदि नकली मुकुट में चांदी मिलाई गई है तो उसका आयतन शुद्ध सोने के मुकुट से अधिक होना चाहिए (चूंकि चांदी का घनत्व 10.5 ग्राम/घन से.मी. है)।

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार नकली मुकुट का घनत्व 15.5 ग्राम/घन से.मी. है।

इसलिए नकली मुकुट का आयतन 0.434/15.5 = 27.47 घन से.मी. होगा। यानी शुद्ध सोने से बने मुकुट और राजा के मुकुट के आयतन का अंतर 27.47−22.48 = 4.99 घन से.मी. है।

इस अंतर का पता लगाने का एक तरीका यह है कि एक बड़े से बर्तन में पानी भर कर दोनों मुकुट को उसमें बारी-बारी से डुबोकर यह देखा जाए कि पानी के तल में कितना अंतर आया।

मेरे सिर का व्यास करीब 20 से.मी. है। राजा का मुकुट कम-से-कम इतना चौड़ा तो होगा ही। इस मुकुट को अच्छी तरह पानी में डुबाने के लिए जो बर्तन लगेगा उसका व्यास इससे थोड़ा ज़्यादा, यानी लगभग 30 से.मी. तो होना चाहिए। इस व्यास के बर्तन की आड़ी काट का क्षेत्रफल लगभग 700 वर्ग से.मी. होगा। तो इस पात्र में दोनों मुकुटों को एक-एक करके डुबाने पर जो 4.99 घन से.मी. का अंतर आएगा वह पानी के तल की ऊंचाई में कितना अंतर पैदा करेगा? यह अंतर होगा 4.99 घन से.मी./700 वर्ग से.मी. = 0.007 से.मी.। इतने कम अंतर के आधार पर मुकुटों

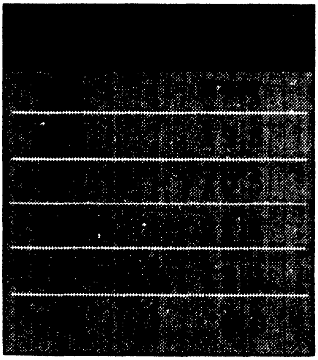

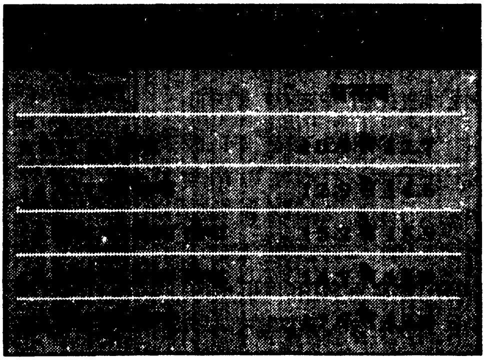

कैरेट मतलब एक बटा चौबीस

कैरेट शब्द का उपयोग हीरे या अन्य रत्नों के संदर्भ में अलग ढंग से होता है और सोने के मामले में अलग ढंग से। रत्न के संदर्भ में इसका आशय वज़न से होता है। मिश्र धातुओं के मामले में इसका अर्थ है कि उस मिश्र धातु के 24 भाग में कितने भाग सोना है। यानी कैरेट मूल्य जितना अधिक है, सोने का प्रतिशत उतना ही अधिक है। शुद्ध सोना 24 कैरेट होता है।

मिश्र धातुओं में सोने का अनुपात हमेशा वज़न से बताया जाता है। जैसे 18 कैरेट सोना मतलब 24 ग्राम में से 18 ग्राम सोना यानी पचहत्तर प्रतिशत सोना है, शेष अन्य धातुएं।

के बीच भेद कर पाना असंभव है। (इस बात पर आप बिलकुल आपत्ति कर सकते हैं कि यह क्यों ज़रूरी है कि राजा का सिर भी मेरे सिर जितना ही सूजा हुआ है!)

विकल्प के तौर पर एक और तरीका अपनाया जा सकता है जिसमें, एक क्षण के लिए मान लेते हैं कि आप इस काम के लिए 4 से.मी. व्यास का नपनाघट इस्तेमाल करते हैं। ऐसे नपनाघट की आड़ी काट का क्षेत्रफल होगा 12.57 वर्ग से.मी.। इस तरीके में आपको एक टोंटीदार (अप्लावी) बर्तन का इस्तेमाल करना होगा। मुकुटों को एक-एक करके अप्लावी बर्तन में डुबाने पर जो पानी निकलेगा उसे नापा जाएगा। दोनों मुकुटों से विस्थापित पानी को इस नपनाघट से मापने पर उनके तल में 4.99/12.57 = 0.39 से.मी. यानी लगभग 4 मिमी का फर्क आएगा। इसे भी उल्लेखनीय नहीं माना जा सकता क्योंकि काफी पानी इतने बड़े अप्लावी बर्तन की दीवार, टोंटी व नपनाघट की दीवार वगैरह से चिपक जाएगा। और अभी तो हमें यह भी पता नहीं कि आर्किमिडीज़ के ज़माने में ऐसे नपनाघट होते भी थे या नहीं।

यानी आयतन नापकर सुनार को पकड़ने के लिए एक अत्यंत सटीक नपनाघट की ज़रूरत होगी और आर्किमिडीज़ के ज़माने में ऐसे उम्दा नपनाघट का कोई ज़िक्र नहीं मिलता।

वज़न में अंतर मापना

दूसरा तरीका यह है कि उस मुकुट के बराबर आयतन का सोने का मुकुट बनाया जाए और उनके वज़न में अंतर ज्ञात किया जाए। इस संदर्भ में सवाल उठेगा कि वज़न को कितनी सटीकता

से नापा जा सकता है।

उपरोक्त उदाहरण में शुद्ध सोने के मुकुट का वज़न 434 ग्राम था। इस वज़न के आधार पर शुद्ध सोने का घनत्व 19.3 ग्राम प्रति घन से.मी. मानते हुए हमने इसका आयतन 22.48 घन से.मी. निकाला था। अब मान लेते हैं कि सुनार ने 18 कैरेट सोने का मुकुट बनाया। अर्थात उसने 75 फीसदी सोना, 16 फीसदी चांदी और 9 फीसदी तांबा लिया। इस तरह के मिश्रण का घनत्व 15.5 ग्राम प्रति घन से.मी. होगा। इस मिश्रण के 22.48 घन से.मी. आयतन के मुकुट का वज़न 15.5 x 22.48 = 348.4 ग्राम होगा। कोई भी ठीक-ठाक तराजू 434 ग्राम व 348.4 ग्राम के बीच के इस अंतर को पकड़ लेगी। इसमें आर्किमिडीज़ के सिद्धांत की कोई ज़रूरत नहीं है।

यदि सुनार 22 कैरेट सोने का उपयोग करता है तो उसका घनत्व 17.7 ग्राम प्रति घन से.मी. होगा। इस मिश्रण के 22.48 घन से.मी. के मुकुट का वज़न 398.72 ग्राम यानी शुद्ध सोने के मुकुट से 35.28 ग्राम कम होगा। इसे पकड़ना भी मुश्किल नहीं है।

मगर यदि सुनार ने मात्र 1-1 फीसदी तांबा और चांदी मिलाई है

सोने की मिश्र धातुएं : लाल और गुलाबी सोना

लाल रंगत वाला सोना बनाना बहुत आसान है। बस, तांबे की मात्रा बढ़ा दीजिए। सोने का अनुपात ठीक रखने के लिए इसमें चांदी का अनुपात कम करना होता है। पहले कई सुनार कीमत कम रखने के लिए चांदी कम करके, तांबा की मात्रा बढ़ा देते थे।

कई लोग मानते हैं कि पुराना सोना लाल होता है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि पुराना सोना नए से बेहतर होता है। ऐसी मान्यताओं के पीछे कोई तार्किक आधार नहीं है।

आमतौर पर लोगों को यह पता नहीं होता कि मात्र दो ऐसे धातुई तत्व हैं जिनका रंग रूपहला यानी सिलवरी नहीं होता। सोना पीला होता है और तांबा लाल होता है। तो इन धातुओं — सोना, चांदी और तांबे का अनुपात घटा-बढ़ाकर मिश्र धातु का रंग गहरे पीले से लेकर गहरे लाल तक बनाया जा सकता है। गहरे पीले रंग के सोने को 'ग्रीन' गोल्ड और लाल रंग के सोने को 'डीप' गोल्ड कहा जाता है।

सोने की विभिन्न मिश्र धातुओं में सोने का अनुपात (वज़न से)

सोना	चांदी	तांबा	जस्ता	निकल	पेलेडियम
9 येलो	37.5	10	45	7.5	–
9 व्हाइट	37.8	0	40	10.4,	11.8
14 येलो	58.5	4	31.2	6.3	–
14 व्हाइट	58.5	0.5	27	7	7
18 येलो	75	16	9	–	–
18 व्हाइट	75	4	4	–	17
22 येलो	19.7	5.5	2.8	–	–

तो इस मिश्रण का घनत्व 19.23 ग्राम प्रति घन से.मी. होगा और मुकुट का वज़न 432.29 ग्राम होगा। यह 434 ग्राम के बहुत ही नज़दीक है। इस मामले में मापन की सटीकता बहुत महत्वपूर्ण हो जाएगी। यानी यदि थोड़ी-सी मिलावट करे तो सुनार बच निकलेगा, आर्किमिडीज़ व उसके सिद्धांत के बावजूद!

आर्किमिडीज़ के सिद्धांत से हल

आपको लगेगा कि शायद मैं समस्या को थोड़ा ज़्यादा ही बढ़ा-चढ़ाकर पेश कर रहा हूं। इंटरनेट पर खोज के दौरान मुझे और भी ऐसे व्यक्ति मिले हैं जिन्होंने इस समस्या पर विचार किया है और उन्हें औरों के सामने प्रस्तुत किया है। इनमें से एक ने समस्या का ज़्यादा यथार्थवादी हल भी पेश किया है।

"धोखाधड़ी को पकड़ने का ज़्यादा कल्पनाशील और व्यावहारिक तरीका निम्नानुसार हो सकता है। इसमें आर्किमिडीज़ के उत्प्लावन के सिद्धांत और उनके लीवर के सिद्धांत दोनों का उपयोग होता है। एक पैमाने के एक छोर पर मुकुट को लटका दें और दूसरे छोर पर उतनी ही मात्रा यानी वज़न का सोने का टुकड़ा लटकाकर पैमाने को संतुलित कर लें। अब पैमाने पर संतुलित मुकुट और सोने के टुकड़े को एक बर्तन में भरे पानी में डुबा दें। यदि अब भी पैमाना संतुलित रहता है तो इसका अर्थ होगा कि मुकुट और सोने के टुकड़े का आयतन बराबर है, यानी मुकुट का घनत्व सोने के बराबर है। मगर यदि पैमाना सोने की तरफ

झुक जाता है तो मुकुट का आयतन ज़्यादा है, यानी इसका घनत्व कम है।

"इस विधि को एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए मुकुट का वज़न 1000 ग्राम है और इसमें 70 फीसदी सोना और 30 फीसदी चांदी है। इसका आयतन 64.6 घन से.मी. होगा और यह इतना ही पानी हटाएगा। लिहाज़ा पानी में इसका आभासी भार 1000–64.6 = 935.4 ग्राम होगा। दूसरी ओर 1000 ग्राम सोने के गुटके का आयतन मात्र 51.8 घन से.मी. पानी हटाएगा। अतः पानी में इसका आभासी वज़न 1000–51.8 = 948.2 ग्राम होगा। यानी पैमाने के एक छोर पर 935.4 ग्राम तथा दूसरे छोर पर 948.2 ग्राम आभासी वज़न लटके हैं। अंतर 12.8 ग्राम है। आर्किमिडीज़ के ज़माने की तुलाएं इतना अंतर तो आसानी से पहचान लेती होंगी। और इस मामले में पानी के चिपकने वगैरह की समस्या भी आड़े नहीं आएगी।

"यह भी गौरतलब है कि यदि मुकुट और सोने के गुटके के वज़न बराबर न हों तो भी यह तरीका काम कर जाएगा। करना सिर्फ इतना होगा कि उन्हें पैमाने पर अलग-अलग दूरी पर लटकाकर पहले पैमाना संतुलित कर लिया जाए। फिर पहले की तरह दोनों को पानी में डुबाकर जांच की जा सकती है।"

यदि आयतन/वज़न बराबर नहीं हैं तो दोनों मुकुटों के घनत्व पता करने का एकमात्र तरीका यही है कि पानी में डुबाने पर उनकी मात्रा/वज़न में हुई कमी को नापा जाए, या परखा जाए।

दरअसल सोने की मिश्र धातुओं के गहनों के उद्योग में शुद्धता पता करने हेतु कोई आधा दर्ज़न विधियों का उपयोग किया जाता है। यह विधि उनमें से एक है। अत्यन्त संवेदनशील इलेक्ट्रॉनिक तुलाओं के प्रचलन की वजह से, एकाध प्रतिशत की मिलावट के बारे में भी इस तरीके से पता लगाया जा सकता है – हवा और पानी में गहने को तौलकर, वज़न में कमी पता करके शुद्धता यानी घनत्व जांचने के लिए आर्किमिडीज़ का सिद्धांत इस्तेमाल किया जा सकता है।

ऐसा लगता है कि आर्किमिडीज़ ने इसी तरीके से मुकुट में मिलावट की बात को पकड़ा होगा, हालांकि वे शायद मिलावट की मात्रा का पता नहीं लगा सके होंगे। उसके लिए उन्हें वास्तव में घनत्व ज्ञात करना पड़ता। पानी में डुबाने पर वज़न में कमी यानी आर्किमिडीज़ के सिद्धांत के उपयोग से घनत्व निकालने का पहला ज़िक्र हमें छठवीं सदी में मिलता है।

और एक अंतिम बात...। आखिर

राजा को शंका क्यों हुई कि मुकुट 24 कैरेट सोने का नहीं है। शायद उसका रंग देखकर। हो सकता है मुकुट के रंग में थोड़ी लाली रही होगी जिसका मतलब है कि उसमें तांबा मिलाया गया था। मगर कोई भी अच्छा सुनार आपको बता देगा कि 24 कैरेट सोने का मुकुट काफी कमज़ोर होगा। 18 कैरेट सोने का मुकुट कहीं ज़्यादा मज़बूत होता है।

एस. श्रीनिवासन: बड़ोदरा में स्थित सहज व लोकोस्ट संस्थाओं की शुरुआत व संचालन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विभिन्न सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों व विज्ञान-गणित शिक्षण में उनकी विशेष रुचि है।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य द्वारा प्रकाशित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण में रुचि है।

खबरों को स्वादिष्ट बनाना!

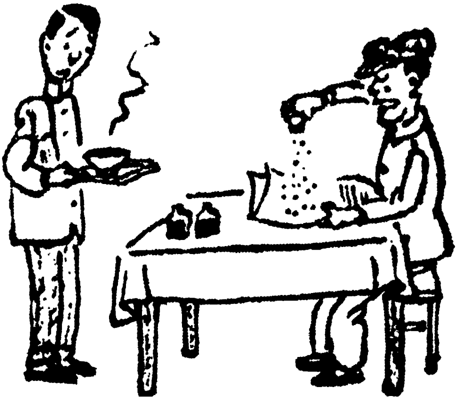

साथी! तुम अखबार को नमक मिलाकर क्यों पढ़ रहे हो? क्या खबरें इतनी बेस्वाद हैं!!

— चायनीज सटायर एंड ह्यूमर से।

इंजेक्शन की शीशी के काम अनेक

उमेशचंद्र चौहान

कक्षा में विज्ञान पढ़ाना एक चुनौती भरा काम होता है। प्रयोग और गतिविधियों की मदद से विज्ञान पढ़ाया जा संकता है लेकिन इसमें कई समस्याएं आ खड़ी होती हैं; जैसे पाठ्यपुस्तकों में पर्याप्त प्रयोग नहीं होते, या पाठ्यपुस्तकों में दिए गए प्रयोग अत्यन्त जटिल होते हैं, या शिक्षकों को गतिविधियों की जानकारी नहीं होती, या प्रयोगशाला के उपकरण महंगे होने के कारण बच्चों को नहीं दिए जाते।

विज्ञान शिक्षण की ऐसी ही कुछ कमियों को दूर करने के लिए होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम में माध्यमिक स्तर की कक्षा के बच्चों को प्रयोग करके, अपने अवलोकनों के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना होता था। बच्चे काफी सस्ती प्रयोग सामग्री का इस्तेमाल करते हुए प्रयोग करते थे। कई बार तो शिक्षक व बच्चे भी किसी स्थानीय सामग्री से वैकल्पिक प्रयोग सामग्री बना लेते थे। जब मैं धौलपुर गांव में शिक्षक बनकर गया तो मैंने देखा कि ऑलपिन के विकल्प के रूप में बबूल के कांटे का उपयोग किया जा रहा था। वहां बच्चे बबूल के कांटे को शर्ट के टूटे बटन की जगह, फिरकी की कील के रूप में, निमोरियों का चक्करदार झूला बनाने आदि में इस्तेमाल कर रहे थे। मुझे सबसे ज्यादा अचरज तब हुआ जब मैंने देखा कि बच्चे फूलों का विच्छेदन भी बबूल के कांटे से कर रहे हैं! मैंने तब से एक बात गांठ बांध ली — वस्तु एक काम अनेक।

ऐसा ही एक अन्य उदाहरण इंजेक्शन की खाली शीशी है।

यह शीशी अत्यन्त बहुउपयोगी है। देखिए एक शीशी कितने कामों में आती है। यहां तो उसकी एक बानगी भर दी गई है। उम्मीद है आप यहां बताए व अन्य प्रयोग बच्चों से करवाएंगे और साथ ही इन पर बच्चों से बातचीत भी करेंगे।

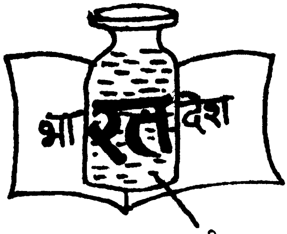

1. एक इंजेक्शन की शीशी को साफ कर लीजिए। इसमें पानी भरकर ढक्कन लगा दीजिए। पानी भरी यह बोतल एक बढ़िया लेंस का काम करती है। इससे बच्चों को किताब के अक्षर, कपड़े के रेशे, बाल, नाखून आदि दिखा सकते हैं।
2. पानी में घुलनशील व अघुलनशील पदार्थ पता करने के प्रयोग करवाएं।

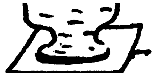

3. शीशी में पानी भरकर उसके मुंह पर कागज़ का टुकड़ा रख दें। अब शीशी को उलटा दीजिए। पानी नहीं गिरेगा। पता करने की कोशिश करें कि पानी क्यों नहीं गिर रहा।
4. शीशी को आधी ऊंचाई तक पानी से भर दीजिए। अब एक खाली, साफ की गई रीफिल से फूंकिए। हवा बुलबुलों के रूप में ऊपर की ओर क्यों आती है? हवा पानी से हल्की है या भारी?

5. शीशी के ढक्कन के बीचोंबीच डिवाइडर से छेद कीजिए। अब उसमें एक रीफिल का टुकड़ा लगा दीजिए। शीशी में पानी भर लीजिए। लीजिए हमारा ड्रॉपर तैयार हो गया। यह ड्रॉपर अब विज्ञान के कई प्रयोगों में काम आ सकता है। इस ड्रॉपर की 20 बूंदें लगभग एक मिली लीटर के

बराबर होती हैं।

ड्रॉपर वाली बोतल में बिना पानी भरे भी इसका उपयोग कई तरह से हो सकता है। जैसे:

– हवा की दिशा का सूचक: एक सुई लीजिए जो शीशी से लंबी हो। कागज़ का तीर बनाकर उसमें सुई को फंसा देते हैं। तीर समेत सुई को ड्रॉपर वाली शीशी में रख दीजिए। अब इसकी मदद से हवा के बहाव की दिशा पता की जा सकती है।

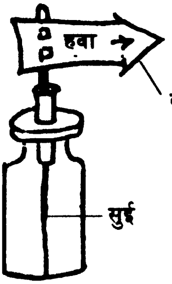

– हवा का प्रसार-संकुचन: खाली ड्रॉपर शीशी में लगी रीफिल में स्याही की एक बूंद अटका लीजिए। अब शीशी को ठंडे पानी से भरी प्याली में आधी ऊंचाई तक डुबो दीजिए। कुछ समय के बाद रीफिल में फंसी स्याही की बूंद नीचे खिसकी हुई दिखेगी। आप भी सोचिए व बच्चों से भी पूछिए, ऐसा क्यों हुआ होगा? शीशी में मौजूद हवा संकुचित किस तरह हुई होगी?

अब रीफिल में स्याही की बूंद फंसी शीशी को धूप में रख दीजिए। थोड़ी देर बाद स्याही की बूंद कहां है? क्या यह रीफिल के बाहर निकल आई।

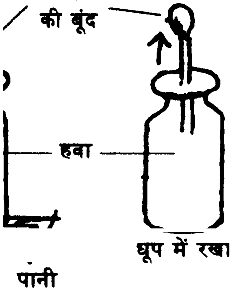

– गैस बनाने वाले उपकरण के रूप में: यदि आपको गैस बनाकर उसे किसी पात्र में एकत्रित करना हो तो भी ड्रॉपर बोतल का उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए आपको दो ड्रॉपर शीशियां और वाल्व ट्यूब का 15-20 सेंटीमीटर लंबा टुकड़ा चाहिए।

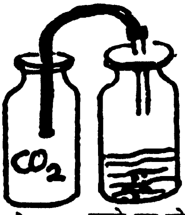

– रीफिल फंसे ढक्कन को बोतल से अलग किया जाए तो ढक्कन का फिरकी की तरह उपयोग किया जा सकता है।

इंजेक्शन की शीशी के बहाने मैं बस इतना कहना चाहता हूं कि किसी बेकार या फालतू समझी जाने वाली वस्तु को भी उपयोगी बनाया जा सकता है। यकीन मानिए प्रयोगों के लिए सामग्री व उपकरण बनाने के लिए यह कतई ज़रूरी नहीं है कि आप बड़े नामी-गिरामी वैज्ञानिक हों। हम आप जैसे शिक्षक भी बखूबी ऐसे नवाचार कर सकते हैं। आप भी कोशिश कीजिए। मेरा विश्वास है विज्ञान शिक्षण इसी तरह आगे बढ़ता है।

उमेशचंद्र चौहान: होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के स्रोत शिक्षक। विज्ञान शिक्षण, उपकरण नवाचार व चित्रकला में विशेष रुचि। फिलहाल टिमरनी ब्लॉक की एक प्राथमिक शाला में प्रधान पाठक हैं।

सभी चित्र: उमेशचंद्र चौहान।

कछुए-खरगोश की दौड़!!

कछुआ: मुझे तुम्हारे साथ दौड़ की कतई ज़रूरत नहीं।

– चायनीज सटायर एंड ह्यूमर से

ज़रा सिर खुजलाइए

पिछले अंक में हमने आपसे तीन सवाल पूछे थे। सवाल इस प्रकार थे:

1. एक व्यक्ति वर्ष 40 ईसा पूर्व के सातवें दिन पैदा हुआ और ईस्वी सन् 40 के सातवें दिन मर गया। बताइए वह व्यक्ति कितने बरस ज़िंदा रहा।
2. एक कार चालक ने कार में एक अतिरिक्त टायर रखते हुए अपना सफर शुरू किया। उसने हर टायर को बारी-बारी से एक जैसा आराम दिया। इस तरह सभी टायरों ने बराबर दूरी तय की। उस व्यक्ति ने कुल 5000 किलोमीटर का सफर किया तो हर टायर ने चलते हुए कितनी दूरी तय की होगी।
3. पांच माचिस की तीलियों का इस्तेमाल करते हुए एक घन बनाने की कोशिश कीजिए। ध्यान रहे माचिस की तीलियों को तोड़ना नहीं है।

इन सवालों के जवाब इस तरंह से हैं:

जवाब:1 वह व्यक्ति कुल 79 वर्ष तक जीवित रहा।

जवाब:2 चूंकि हरेक टायर कुल समय के 4/5 समय तक इस्तेमाल हुआ, इसलिए हरेक टायर ने कुल 5000 किलोमीटर की 4/5 दूरी, यानी 4000 किलोमीटर दूरी तय की है।

जवाब:3 नीचे दिए चित्र के मुताबिक एक तीली को लिटाकर, चार अन्य तीलियों को मिलाने पर घनाकार आकृति बनती है।

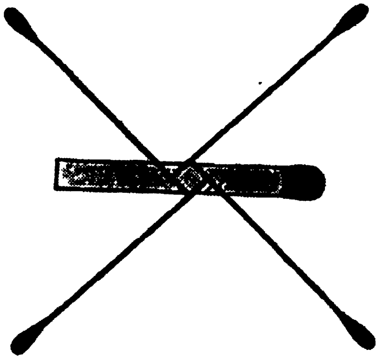

इस बार के सवाल

1. किसी गांव में 800 महिलाएं रहती हैं। इनमें से 3% महिलाएं एक कान में बाली पहनती हैं। शेष 97% में से आधी महिलाएं अपने दोनों कानों में बाली पहनती हैं और शेष आधी महिलाएं किसी भी कान में बाली नहीं पहनतीं। तो उस गांव में कुल मिलाकर हर महिला के लिए कितनी बालियां उपलब्ध हैं?

2. एक आवक-जावक बाबू के पास चार खत हैं जिन्हें पोस्ट किया जाना है। उसके पास इन चार खतों के पते लिखे लिफाफे भी हैं। काम की जल्दी में उसने पता देखे बिना खतों को एक-एक लिफाफे में रख दिया। अब वो परेशान है कि पता नहीं किस लिफाफे में किसका खत रखा गया हो! इस बात की कितनी संभावना है कि कम-से-कम तीन खत तो सही लिफाफों में होंगे ही?

3. कॉफी का एक शौकीन किसी कॉफी हाउस में गया। अभी उसने चीनी मिलाई ही थी कि कॉफी में मक्खी गिर गई। शौकीन ने वेटर से कॉफी बदलकर लाने के लिए कहा। थोड़ी देर में वेटर दोबारा कॉफी लेकर आया। शौकीन ने गहरी सांस लेते हुए हल्का-सा घूंट पिया और वेटर से बोला, "तुम मक्खी वाली कॉफी ही लेकर आए हो!" कॉफी के शौकीन को वेटर की बदमाशी कैसे पता चली होगी?

4. बाज़ार में तोते बेचने वाला चिल्ला रहा था, "जो इस तोते के सामने बोलोगे, तोता उसे दोहराएगा। यह मेरा दावा है।"

तोतेवाले की बातें सुनकर एक आदमी ने तोते को खरीद लिया। घर पर वह तोते के सामने कुछ बोलने लगा। तोते ने कुछ भी नहीं दोहराया। उस आदमी ने बार-बार कोशिश की कि तोता कुछ बोले, लेकिन नतीजा सिफर रहा। क्या तोते बेचने वाले का दावा गलत था?

अगर आपके पास इन सवालों के जवाब हैं तो कृपया हमारे पास जल्द-से-जल्द भेजिए। हमारा पता आप जानते ही हैं।

पिछले अंक में सवालीराम से पूछे गए सवालों के जवाब अगले अंक में दिए जाएंगे।

संदर्भ सजिल्द उपलब्ध हैं

अंक 7-12

अंक 1-6

अंक 13-18

अंक 19-25

अंक 31-36

अंक 26-30

अंक 37-42

अंक 43-48

पिछले आठ सालों में प्रकाशित समस्त सामग्री संदर्भ की आठ सजिल्दों में समेटी गई है।

हरेक सजिल्द के साथ है एक विषयवार इंडेक्स जो किसी भी लेख को तुरंत आपके सामने लाए।

प्रत्येक का मूल्य 100 रुपए। डाक खर्च अतिरिक्त।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र. 461001
फोन: 07574 - 253518

एकलव्य
ई-7/ एच. आई. जी. 453,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म. प्र. 462016
फोन: 0755 - 2463380, 2464824

घर्र-घर्र घराट

कमलेश उप्रेती एवं विनोद उप्रेती

कुछ अंक पहले हमने पनचक्की के संबंध में एक लेख प्रकाशित किया था। लेख के अंत में भारत में पनचक्कियों (घराट) पर संक्षिप्त जानकारी भी दी थी। यह जानकारी मुख्य रूप से पनचक्कियों के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं से संबंधित थी। हमारे कई पाठक भारत की पनचक्कियों की तकनीक के बारे में थोड़ा विस्तार से जानना चाहते थे। हाल ही में उत्तरांचल से हमारे दो पाठकों ने 'घराट' के बारे में कुछ जानकारी भेजी है जिसे हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

आवश्यकता और भौगोलिक अनुकूलता के कारण भारत के कई पहाड़ी इलाकों में घराट का उपयोग होता है। पहाड़ों पर घराट उन जगहों पर बनाए जाते हैं जहां आसपास पानी का बारह मासा स्रोत उपलब्ध हो – जैसे नदी या गधेरों के किनारे। आखिर पानी ही है जो घराट को गतिमान बनाए रखता है। पहाड़ी इलाकों में घराट का कई तरह से इस्तेमाल किया जाता है। जैसे – अनाज पीसना, तेल पेरना, लकड़ी के मोटे तनों से बर्तन बनाना। यहां तक कि घराट से बिजली का निर्माण भी किया जाता है।

पहाड़ों में आम जनता का घराट से गहरा जुड़ाव है और इसे सारे गांव की संपत्ति माना जाता है। पर समय के साथ आर्थिक रूप से सक्षम लोग घराट से दूर होते गए और नए साधनों की ओर उन्मुख हुए हैं। लेकिन घराट अब भी गरीबों के लिए मित्रवत बना हुआ है और निशुल्क मदद देता रहा है। इन सबके चलते कई जगहों पर घराट के रख-रखाव का काम निम्न आय वाले समूहों के हाथों में आ गया है।

जिन लोगों ने घराट को देखा नहीं होता उन्हें घराट के तकनीकी पक्ष को समझने में काफी रुचि होती है। इसलिए हम यहां इसके तकनीकी पक्ष पर थोड़ी बात करेंगे।

घराट में काफी सरल और सहज युक्तियों का इस्तेमाल होता है। पहाड़ के किसी नदी या गधेरे के किनारे घूमते हुए आपको सहसा घरघराहट की आवाज़, पानी की छप-छप के साथ सुनाई दे तो रुक जाइए, आसपास कहीं घराट चल रहा होगा। ध्यान देने पर छोटा-सा दुमंज़िला मकान दिखेगा, जिसे झोपड़ी कहना ज़्यादा सही होगा, इसी मकान के भीतर रहता है घराट।

पास की नदी या गधेरे से पानी को एक कूल (नहर) से घराट तक लाया जाता है और इससे एक पनेले (पाइप) द्वारा निचली मंज़िल में गिराया जाता है। ये पाइप लकड़ी के तने को भीतर से खोखला कर बनाया जाता है। यह पाइप ऊपर की ओर चौड़ा और निचले हिस्से की ओर क्रमशः संकरा होता है, जिससे पानी के गिरने की गति तेज़ हो जाती है।

निचली मंज़िल में पानी टरबाइन की पंखुड़ियों पर गिरता है। टरबाइन तैयार करने के लिए चीड़ की लकड़ी का तीन फीट लंबा बेलन बनाया जाता है। बेलन की बाहरी सतह पर लंबे-लंबे खांचे बनाकर उन खांचों में चीड़ के फट्टे थोड़े झुकाकर ठोके जाते हैं। पाइप से आने वाला पानी लकड़ी के इन्हीं फट्टों पर गिरता है। यहां तक आते-आते टरबाइन तो लगभग तैयार हो गया है, बस टरबाइन के घूमने के

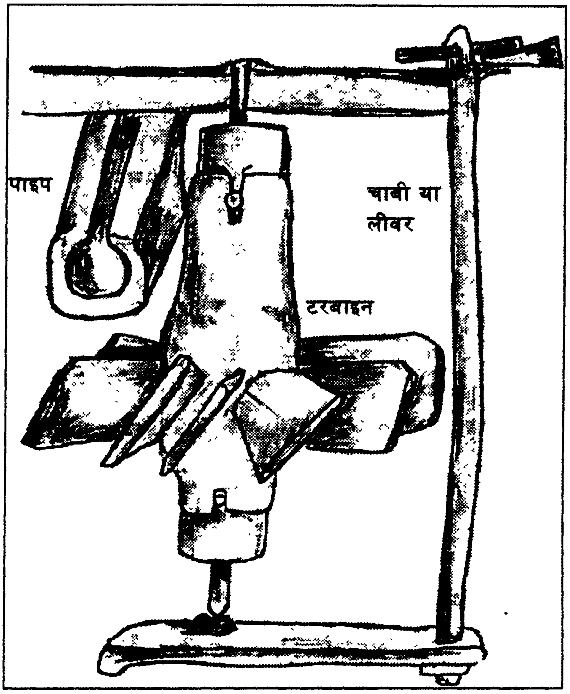

लिए व्यवस्था बनानी बाकी है। टरबाइन के घूमने के लिए एक लोहे की लंबी छड़ को बेलन की लंबाई में ठोंककर निचले सिरे की तरफ से एक ठोस पत्थर के आधार पर खड़ा कर देते हैं। फलस्वरूप टरबाइन घूमती है। लोहे की छड़ के ऊपरी सिरे को ऊपरी मंज़िल पर चक्की से जोड़ा जाता है। चक्की का निचला पाट फिक्स कर दिया जाता है और इस पाट में से गुज़रती हुई लोहे की छड़ से चक्की का ऊपरी पाट जोड़ दिया जाता है। इस व्यवस्था के बाद टरबाइन के घूमने पर चक्की का सिर्फ ऊपरी पाट ही घूमेगा।

घराट में एक खास व्यवस्था होती है – अनाज को मोटा या महीन पीस सकने की सुविधा। अनाज महीन पीसने के लिए दोनों पाटों के बीच की दूरी को कम करना होता है। और अनाज को मोटा पीसने के लिए ज़रूरी है कि दोनों पाटों के बीच का फासला बढ़ जाए। फासले को कम-ज़्यादा करने के लिए टरबाइन को उसके आधार के साथ ऊपर-नीचे किया जाता है जिससे

टरबाइन की छड़ से जुड़ा ऊपरी पाट भी ऊपर-नीचे होता है। इसके लिए टरबाइन को जिस आधार पर टिकाया जाता है उसे एक लकड़ी के तख्ते पर फिट किया जाता है। तख्ते से एक लंबी लकड़ी जोड़कर उसे ऊपरी मंज़िल में निकाला जाता है। इस लीवरनुमा रचना से टरबाइन को ऊपर उठाना और नीचे करना संभव है। इस युक्ति को चाबी भी कह सकते हैं।

यहां तक पहुंचते-पहुंचते घराट तो बन गई। परन्तु पानी से चलने वाली यह घराट धीमी रफ्तार से अनाज पीसती है। अब कौन यहां बैठा रहेगा अपना अनाज धीरे-धीरे डालने के लिए, और अगर यही करना है तो घर में हाथ से चलाई जाने वाली चक्की में क्या बुराई है? मशीन तो होती ही है मानवीय श्रम और समय की बचत के लिए, सो घराट में भी अनाज डालने के व्यवस्था है। पाटों के ऊपर लकड़ी का एक बर्तन लटकाया जाता है। इस

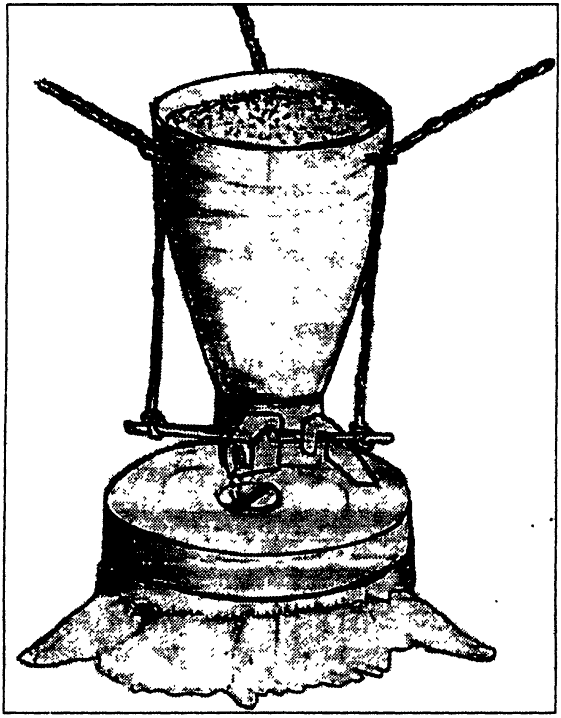

बर्तन के तले में एक छेद होता है, यह छेद पाटे के छेद के ठीक ऊपर होता है। इस बर्तन के छेद से अनाज घूमते हुए पाटे में गिरता है और पिसाई होकर बाहर गिरता है। यहां बस एक छोटी-सी दिक्कत है – वह यह कि बर्तन को लगातार धीमे-धीमे हिलाना होता है ताकि अनाज छेद स होकर पाटों पर गिरता रहे। इसके लिए लकड़ी की एक घुंडी बर्तन के निचले हिस्से से लटकी होती है जो हौले-हौले पत्थर के पाट से टकराती है और लकड़ी का बर्तन एक लय में धीमे-धीमे हिलता रहता है तथा अनाज भी गिरता रहता है।

इतनी सब जानकारी के बाद जब आप अनाज पीसने घराट पर जाएं तो सबसे पहले कूल को नदी से जोड़ दें और जैसे ही इसमें पानी बहना शुरू हो जाए, लकड़ी के बर्तन में अनाज डाल दीजिए। घराट चलना अभी शुरू नहीं हुआ है। घराट शुरू करने के लिए चाबी से चक्की के ऊपरी पाट को थोड़ा ऊपर उठाना ज़रूरी है क्योंकि उपयोग न होने की स्थिति में चक्की को बैठा दिया जाता है और पाट आपस में चिपके रहते हैं। जैसे ही आपने ऊपरी पाट को थोड़ा ऊपर उठाया कि घराट चल पड़ा; और टरबाइन पर गिरते पानी की छप-छप और पाटों से टकराती लकड़ी की घुंडी की टक-टक की आवाज़ आसपास सुनाई देने लगेगी।

डीज़ल-बिजली से चलने वाली चक्कियों और नई तकनीकों के चलते घराट का प्रचलन कम होता जा रहा है। लेकिन बिजली के होने की अनिश्चितता व डीज़ल की लगातार बढ़ती कीमत की वजह से घराट आज भी एक सस्ता विकल्प है। उत्तरांचल के कुछ इलाकों में तो इनका व्यापारिक इस्तेमाल भी होता रहा है। बहुत सारी सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएं भी इनके विकास के लिए प्रयासरत हैं।

कमलेश उप्रेती: एम. एस सी. गणित के छात्र हैं। विज्ञान लेखन में रुचि।
विनोद उप्रेती: बी. एस सी. के छात्र हैं। चित्रकारी व फोटोग्राफी में रुचि।
सभी रेखाचित्र: विनोद उप्रेती।
घराट/पनचक्की पर संदर्भ के अंक 40 में भी एक लेख प्रकाशित हो चुका है।

जे. बी. एस. हाल्डेन: एक ज़बरदस्त व्यक्तित्व

अरुण कुमार सिंह

वैज्ञानिकों के बारे में यह आम धारणा है कि उन्हें अपने काम के अलावा बाकी दुनिया के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। वे अपनी सामाजिक-राजनैतिक वास्तविकताओं से बेखबर रहते हैं। लेकिन हाल्डेन के बारे में ऐसी धारणाएं फिट नहीं बैठतीं। वे न सिर्फ अपने क्षेत्र में आला दर्जे के थे, बल्कि राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर भी काफी सक्रिय थे; और यह सक्रियता भी इतनी थी कि राजनैतिक मतभेदों के कारण अपना देश इंग्लैंड छोड़कर भारत आ बसे।

जे. बी. एस. हाल्डेन का जन्म 5 नवंबर 1892 को इंग्लैंड में ऑक्सफोर्ड में हुआ था। उनके पिता जॉन स्कॉट हाल्डेन विख्यात शरीर-विज्ञानी थे। पिता की प्रयोगशाला ही हाल्डेन का खेलने का आंगन थी। छोटी उम्र से ही उनके व्यवहार में बौद्धिक परिपक्वता, तेज़ याद्दाश्त और जल्दी ही आपा खो बैठने का डायनामाइट झलकने लगा था।

स्कूली उम्र से ही हाल्डेन में अकादमिक प्रतिभा के साथ-साथ ज़बर्दस्त व्यवस्था विरोधी प्रवृत्ति थी, जो आगे चलकर अक्सर नाफरमानी का रूप धारण कर लेती थी। वे सही मायनों में बहुआयामी व्यक्ति थे और एक गणितज्ञ, क्लासिकल विद्वान, दार्शनिक, पत्रकार, एक कल्पनाशील लेखक या वैज्ञानिक, किसी भी तरह सफल हो सकते थे। और कमोबेश वे इनमें से सब थे। लेकिन जैसा कि उनके बाद के जीवन से हमें देखने को मिलता है, व्यवहार कुशल न होने के कारण वे राजनेता और प्रशासक तो कतई नहीं हो सकते थे। हां, वे अपने समय के एक उम्दा जीव-वैज्ञानिक ज़रूर साबित हुए।

उनके समकालिक जीव-शास्त्री

सर पीटर मेदावर के शब्दों में, "बहुत जल्दी ही मुद्दों की जड़ तक पहुंचने की और एकदम अनूठे तरीके से उन्हें जोड़ पाने की उनकी क्षमता की वजह से कह सकता हूं कि मुझे उन जैसा होशियार आदमी आज तक नहीं मिला। जिस किसी भी वैज्ञानिक मुद्दे की ओर वे मुखातिब हुए, उन्होंने उस बाबत कुछ-न-कुछ नई बात ज़रूर कही। फिर चाहे वह एंज़ाइम क्रियाओं की बात हो या जीवों के विकास के दौरान एक कारक के रूप में रोगों की भूमिका, ऐंटीजन व जीन्स के बीच के संबंध की बात हो या फिर लंबे समय तक कार्बन डाइऑक्साइड की अत्याधिक मात्रा के संपर्क में आने से निर्णय लेने की क्षमता के ह्रास का मामला।"

हाल्डेन ने ही सबसे पहले सामान्य तौर पर जीव-जगत में आनुवंशिकीय सहलग्नता (लिंकेज) तथा खासतौर पर मनुष्य में उत्परिवर्तन की व्याख्या की थी। लेकिन उनका सबसे अहम काम तो 1920 के दशक में शुरू हुआ – मेंडल की आनुवंशिकीय अवधारणाओं के आधार पर डार्विन के विकासवाद की नए सिरे से जांच-पड़ताल। अपने काम के संबंध में अपने ही शरीर पर विभिन्न परीक्षण करने के कारण उन्हें काफी शोहरत मिली और वे लोगों के अचंभे का विषय बने। जो प्रयोग वे खुद पर नहीं कर सकते थे, वह दूसरे किसी पर कभी नहीं करते थे। कई बार उन्होंने अपने खून में ही कार्बन डाइऑक्साइड या हाइड्रो-क्लोरिक एसिड मिश्रित करके उसके प्रभाव को देखा और विभिन्न परीक्षणों के दौरान कीड़े-मकोड़ों को अपने शरीर पर रेंगने और खून चूसने की इजाज़त दी। वे वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए जीव-जंतुओं को उत्पीड़न पहुंचाने के सख्त खिलाफ थे। उनका कहना था, "यदि आप एक प्राचीन भारतीय शब्द का इस्तेमाल करना चाहें तो, ये परीक्षण वह तपस है, जो किसी और ज़रिए से हासिल न हो सकने वाले ज्ञान के लिए ज़रूरी होती है।"

इस तरह के प्रयोगों से 'मानव शरीर कैसे काम करता है?' जैसे सवालों पर थोड़ी बहुत रोशनी तो पड़ी ही। फिर हाल्डेन जैसे व्यक्ति का तो कहना ही था, "जब तक आप अपने खुद के और अपने साथियों के शरीर को उतने रोमांच से नहीं देखते, जितने रोमांच से आप सितारों भरे आसमान को देखते हैं, और जब तक आप उसका इस्तेमाल थका देने वाली हद तक नहीं करते, तब तक आप एक अच्छे शरीर-विज्ञानी नहीं हो सकते।"

यही नहीं, विज्ञान को एकदम सरल और सहज बनाकर प्रस्तुत करने की असाधारण क्षमता भी हाल्डेन में थी। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के अपने उम्दा काम के लिए वे सदा याद किए जाते रहेंगे। इस काम में उन्हें अपनी पहली पत्नी शार्लट से काफी सहयोग मिला। दरअसल आगे चलकर अपने लोकप्रिय विज्ञान-लेखन के ज़रिए उन्होंने काफी पैसा कमाया।

लेकिन इससे यह कहना तो गलत होगा कि सिर्फ पैसा ही उनके उन सारे लेखों और निबंधों के पीछे का प्रेरक तत्व था, जो उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए अविरत लिखे। उनके इस सारे लेखन के पीछे का वास्तविक कारण उनके शब्दों में, "बहुत से वैज्ञानिकों का विश्वास है कि उन्हें अपना लेखन सिर्फ पांडित्यपूर्ण जर्नलों तक ही सीमित रखना चाहिए, लेकिन मेरे ख्याल से आम लोगों को यह जानने का पूरा-पूरा हक है कि उन सारी प्रयोग शालाओं में क्या होता है जिनके लिए वे अपना पैसा देते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि जहां तक संभव हो, धर्म और राजनीति पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण लागू किया जाना चाहिए।"

आज के संदर्भ में उनके इन विचारों की प्रासंगिकता और भी उभर कर आती है। हाल्डेन के मुताबिक विज्ञान की अवधारणाओं से ज़्यादा महत्वपूर्ण, उसका वह पहलू है जो समाज पर विज्ञान के असर को रेखांकित करता है। विज्ञान के प्रति उनके इस उपयोगितावादी रवैये को एक संबल मिला जब वे अपने ही समकालिक महान वैज्ञानिक निकोलाई वैविलोव के निमंत्रण पर सोवियत रूस गए। अपनी इस यात्रा के दौरान हाल्डेन और उनकी पत्नी शार्लट, वैज्ञानिकों और उनके काम को राज्य द्वारा मिलने वाले सहयोग से काफी प्रभावित हुए और फिर अपनी नास्तिक विचारधारा के कारण वे वैसे भी कम्युनिस्ट सोच के काफी करीब थे। हिटलर और फासिज़्म के उद्भव पर तो हाल्डेन ने अंततः कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल होने का फैसला कर ही लिया, क्योंकि इसी को वे पूंजीवाद और फासीवाद की बुराइयों से लड़ने का सबसे उम्दा हथियार मानते थे। उन्होंने बहुत-से मुद्दों और बहुत-सी चीज़ों पर मार्क्सवादी नज़रिया अपनाते हुए काफी कुछ लिखा।

लेकिन हाल्डेन ने मार्क्सवाद को कभी भी कठमुल्लों की तरह स्वीकार नहीं किया। वे विचार और तर्क की स्वतंत्रता के हिमायती थे। इसलिए आगे चलकर स्तालिन के क्रिया-कलापों और लाइसेंको के मामले ने

उनके विचारों को काफी कुछ बदल डाला। हालांकि वे कम्युनिस्ट विचारधारा को अपना समर्थन देते रहे लेकिन पार्टी के सदस्य वे कुल आठ साल तक ही रहे। पार्टी छोड़ने के बाद भी वे हमेशा साम्राज्यवादी नीतियों का विरोध करते रहे। इसीलिए 1957 में स्वेज नहर को लेकर मिस्र पर ब्रितानी और फ्रांसीसी हमले के खिलाफ उन्होंने अपनी मातृभूमि ब्रिटेन तक को 'अपराधियों का देश' कहकर अलविदा कह दिया।

इसके बाद वे भारत चले आए और यहीं के नागरिक बनकर बस गए। पी. सी. महालनवीस के बुलावे पर उन्होंने कलकत्ता के 'इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टिट्यूट' में काम करना शुरू कर दिया। लेकिन यहां भी अपने तेज़-तर्रार व्यक्तित्व के कारण उन्हें काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा और अंततः उतने ही तेज़ और प्रखर व्यक्तित्व वाले पी. सी. महालनवीस से न निभ पाने के कारण हाल्डेन को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा।

इसके बाद उन्हें वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (काउंसिल फॉर सांइटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, सी.एस.आई.आर.) द्वारा एक प्रयोगशाला स्थापित करने का निमंत्रण मिला। लेकिन यहां भी नौकरशाही के कारण उन्हें हताशा ही मिली। और इस हताशा में उन्होंने इसे नाम दिया, सी.एस.आई.आर. यानी काउंसिल फॉर सप्रेशन ऑफ इंडिपेंडेंट रिसर्च। आखिरकार बीजू पटनायक के कहने पर उन्होंने भुवनेश्वर में 'जेनेटिक्स एंड बायोमिट्री लैबोरेटरी' की स्थापना की। भुवनेश्वर में 1 दिसंबर 1964 को रेक्टम के कैंसर के कारण उनकी मौत हुई।

अपनी मौत में भी हाल्डेन, हाल्डेन ही रहे। अंततः उनके शव को चिकित्सकीय अनुसंधान और शिक्षण के लिए काकीनाडा के रंगरैय्या मेडिकल कॉलेज भेजने का निर्णय लिया गया। अपनी वसीयत में हाल्डेन ने लिखा, ''मेरे पूरे जीवन भर मेरे शरीर का इस्तेमाल इन दोनों ही उद्देश्यों के लिए हुआ है। और मेरी मौत के बाद, मेरा अस्तित्व रहे या न रहे, मेरे लिए इसका कोई उपयोग नहीं होगा। इसलिए मेरी इच्छा है कि अब इसका इस्तेमाल औरों के द्वारा हो।''

अरुण कुमार सिंह: फिलहाल दिल्ली में रहते हुए फ्रीलांस काम करते हैं।
यह लेख 'स्रोत' से साभार। 'स्रोत' एकलव्य की विज्ञान एवं तकनालॉजी की फीचर सेवा है।

हिंदी और अंग्रेज़ी में

एकलव्य का एक नया प्रकाशन

एक अंक का मूल्य 10 रुपए

वार्षिक चंदा (एक संस्करण) 120 रुपए

एक पाक्षिक दीवार पत्रिका

छात्रों को विज्ञान,
वैज्ञानिक मानसिकता से
जोड़ने का एक प्रयास

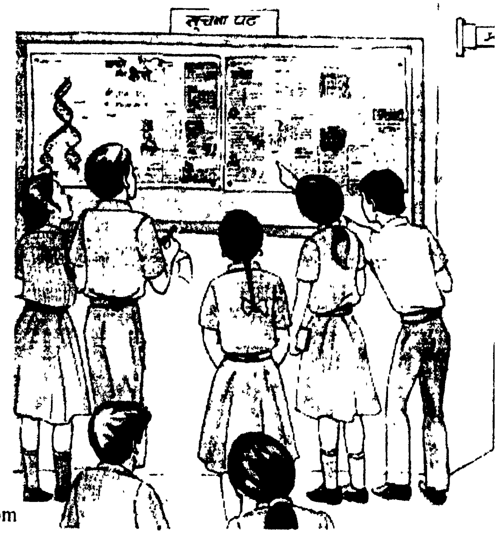

और जानकारी के लिए संपर्क करें

एकलव्य, ई-7/एच.आई.जी. 453,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
पिन :- 462 016
ई-मेल -eklavyamp@mantrafreenet.com

किसान आंदोलन

भारतीय इतिहास में किसानों द्वारा अपने ऊपर किए जा रहे अत्याचार या शोषण का प्रतिरोध करना कोई नई बात नहीं रही है। अपना प्रतिरोध दर्ज करने के लिए उन्होंने जो तरीके अपनाए वो आमतौर पर दो तरह के थे – एक, अत्याचारी शासक या स्थानीय ज़मींदार के अधिकार क्षेत्र से दूर जाकर किसी और इलाके में खेती करना तथा दूसरा, सीधे तौर पर उन अत्याचारियों का विरोध करना। यह विरोध अक्सर आक्रामक या हिंसक रूप भी अख्तियार कर लेता था।

पहले किस्म के विरोध प्रदर्शन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात हमें याद रखनी चाहिए कि आज से करीब 100 साल पहले तक शासक वर्ग के लिए भूमिकर आय का सबसे बड़ा व महत्वपूर्ण स्रोत था। ऐसे में किसी शासक के इलाके के किसान शासक से तंग आकर उसका

इलाका छोड़ किसी और इलाके में चले जाएं तो इसका सीधा असर उस शासक की आय पर पड़ता था। इसलिए शासक वर्ग यह कभी नहीं चाहता था कि किसान उसका इलाका छोड़कर जाएं। आज की स्थिति के विपरीत पुराने समय में देश के ऐसे सभी इलाके जहां खेती की जा सकती थी, वहां खेती नहीं हो रही थी। उस समय किसी भी व्यक्ति को यह छूट थी कि वह कहीं भी ज़मीन तोड़कर खेती करना शुरू कर सकता था। इस काम में उस इलाके का शासक वर्ग भी उनकी मदद करता था – क्योंकि इसका फायदा उन्हें भी मिलने वाला होता था। किसानों द्वारा विरोध प्रदर्शन का यह तरीका सबसे ज़्यादा प्रचलित था और सैकड़ों साल तक किसानों ने इसका इस्तेमाल किया।

इसी के साथ दूसरे किस्म के विरोध प्रदर्शन, यानी शासक वर्ग की सत्ता को चुनौती देना, भी होते थे। ऐसा एक उदाहरण हमें छठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से मिलता है। जब कलभ्र नामक एक कबायली जाति के लोगों ने ब्राह्मणों और अन्य उच्च वर्ण के लोगों से उन्हें शासकों द्वारा दान में मिली ज़मीनें छीन ली थीं। इसी तरह दसवीं शताब्दी में पूर्वी भारत में कैवर्तों ने, जो कि कलभ्रों की ही तरह नीची जाति के लोग थे – पाल शासक महीपाल के समय में अपनी ज़मीन वापस पाने के लिए विद्रोह किया था। इस किस्म के विरोध प्रदर्शन भारत में पूर्व मध्यकाल से शुरू होकर अंग्रेज़ों का शासन स्थापित होने तक बहुत ही आम हो गए थे। लेकिन इस किस्म के विरोध प्रदर्शन या विद्रोहों की जो सबसे खास बात थी कि इन विद्रोहों का नेतृत्व स्थानीय ज़मींदार या भूमिकर व्यवस्था से जुड़े निचले तबके के अधिकारियों के हाथों में होता था और आमतौर पर ये विद्रोह शासक के स्तर पर किए गए परिवर्तनों के विरोध में होते थे।

इस समय के विद्रोहों का अध्ययन करने पर हमें यह भी पता चलता है कि अंग्रेज़ों की व्यवस्था शुरू होने से पहले तक ज़मींदारों या निचले स्तर के शासकीय अमलों के, किसानों से संबंध आमतौर पर अच्छे थे और इसी कारण यह ज़मींदार वर्ग विद्रोहों के दौरान किसानों का नेतृत्व संभाल पाता था।

लेकिन अंग्रेज़ों की शासन व्यवस्था आरंभ होने के बाद ज़मींदारों और किसानों के बीच का यह सौहार्दपूर्ण संबंध ज़्यादा दिनों तक नहीं चल पाया। इसका कारण बनी अंग्रेज़ों द्वारा लागू की गई नई भूमिकर

व्यवस्थाएं। इन व्यवस्थाओं ने भूमि को एक परिवर्तनीय (हस्तांतरणीय) संपत्ति के रूप में बदल दिया, अर्थात भूमि अब खरीद-बिक्री की जा सकने वाली एक वस्तु बन गई। इसी के साथ पुराने ज़मींदारों या भूमिकर वसूलने वालों का स्थान नए ज़मींदारों व साहूकारों ने ले लिया जिसके कारण पुराने ज़मींदारों व किसानों के बीच सदियों से जो सौहार्दपूर्ण संबंध थे वे खत्म हो गए। यह सब किस प्रकार हो पाया इसे थोड़ा समझने की ज़रूरत है।

एक औपनिवेशिक ताकत के रूप में अंग्रेज़ों का उद्‌देश्य भारत से ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा कमाना था। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत वे भारत में भूमिकर के माध्यम से ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा उगाहने की कोशिश करते थे और फिर इसी पैसे से भारत का सामान खरीद कर इंग्लैंड व यूरोप के अन्य देशों में बेचकर मुनाफा कमाते थे। इन व्यापारिक गतिविधियों के कारण उन्हें पैसा अधिक मात्रा में तथा निर्धारित समय पर चाहिए होता था। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने भूमिकर की ऐसी व्यवस्थाएं बनाईं जिसमें उन्हें ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा नियत समय पर प्राप्त हो सके। इन व्यवस्थाओं ने परंपरागत रूप से चली आ रही भूमिकर से संबंधित संरचना को तोड़ दिया। जब पुराने ज़मींदार अत्याधिक ऊंची दर पर निश्चित समय सीमा के अन्दर कर उगाहने में असफल रहे तो उन्हें हटाकर नए लोगों को इसकी ज़िम्मेदारी दे दी गई। इन नए लोगों को कृषि के विकास या किसानों की भलाई की कोई चिंता नहीं थी उन्हें तो केवल कर से मतलब था जिसे उन्हें एक नियत तिथि से पहले जमा करना पड़ता था। (एक अध्ययन के अनुसार बंगाल में केवल 30 वर्षों में भूमि कर की दर मुगल काल की दर से दोगुनी हो गई थी।) जिन इलाकों में ज़मींदारों की जगह सीधे किसानों से कर वसूलने की व्यवस्था थी वहां भी कर की ऊंची दर तथा निश्चित तारीख के कारण किसान काफी मुश्किल में थे। समय पर कर न चुकाने पर ज़मीन की नीलामी का डर बना रहता था। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ शासन को इस बात की परवाह नहीं होती थी कि सूखा पड़ा है या अकाल, उन्हें तो तय राशि चाहिए ही होती थी। नतीजा यह हुआ कि किसान धीरे-धीरे महाजनों के चंगुल में फंसते चले गए और इस तरह उनकी ज़मीन, फसलें व पशु उनके हाथ से निकल कर ज़मीदारों, व्यापारियों-महाजनों और धनी किसानों के हाथ में पहुंचते गए। खुद की ज़मीन जोतने वाले छोटे किसानों की हैसियत

महज काश्तकारों, बटाईदारों व खेतिहर मज़दूरों की ही रह गई।

देशी और विदेशी शोषण के इस चक्र को तोड़ने के लिए किसानों ने कई कोशिशें की। सन् 1780 से लेकर 1857 की क्रांति तक इन किसानों ने अपने पुराने ज़मींदारों व शासकों के नेतृत्व में भारत में जगह-जगह पर अंग्रेज़ों के खिलाफ अनेक विद्रोह किए। मगर ये सारे विद्रोह असफल रहे और अंग्रेज़ों ने इन्हें सख्ती से दबा दिया।

सन् 1858 के बाद किसानों के आन्दोलन में थोड़ा बदलाव आया। अब किसानों ने अपनी मांगों को लेकर सीधे लड़ना शुरू किया। उनकी ज़्यादातर मांगें आर्थिक होती थीं और आमतौर पर विदेशी बगान मालिकों, देशी/विदेशी ज़मींदारों व महाजनों के खिलाफ होती थीं। उनके संघर्ष का उद्देश्य बहुत ही सीमित था। कहीं-कहीं तो यह उत्पीड़न के खिलाफ बदले की कार्रवाई तक ही सीमित रह गया था। इसके अलावा ये आंदोलन क्षेत्र विशेष तक सीमित रह गए क्योंकि उस समय तीव्र गति की संपर्क सुविधाएं नहीं थीं। संघर्ष में न तो निरंतरता थी, न ही दीर्घकालीन संगठन। जब किसी आंदोलन के खास उद्देश्य पूरे हो जाते तो वह समाप्त हो जाता और इसी के साथ संगठन और एकता भी खत्म हो जाती थी। जैसे बंगाल का 'नील आंदोलन', 'पाबना कृषक आंदोलन' तथा दक्कन में महाजनों व साहूकारों के खिलाफ छेड़ी गई मुहीम अपने शुरुआती उद्देश्यों को प्राप्त कर लेने के बाद आगे नहीं बढ़ पाई।

वैसे इन आंदोलनों में किसानों ने अद्भुत साहस व बलिदान का परिचय दिया। उनमें गज़ब की संगठन क्षमता थी। एक ऐसी एकता जिसने जाति-धर्म के सारे बंधन तोड़ दिए। अपनी इसी एकता और साहस के बल पर वे उपनिवेशवादी सरकार से रियायतें हासिल करने में सफल रहे। उस दौर में जबकि सरकार उनके खिलाफ थी, कानून और उनकी मांगों पर गौर करने के लिए बने ट्रिब्यूनल उनके खिलाफ थे, प्रेस (जो कि मुख्यतः यूरोपीय व सरकार समर्थक थी) उनके खिलाफ थी, उनकी यह सफलता खास मायने रखती है।

लेकिन ये किसान किसी बदलाव के लिए नहीं बल्कि यथास्थिति को बरकरार रखने के लिए लड़ रहे थे। मसलन उन्होंने कभी ज़मीन पर मालिकाना हक या ज़मींदारी के खिलाफ लड़ाई नहीं छेड़ी। उन्होंने लड़ाई छेड़ी ज़्यादा लगान और ज़मीन से बेदखल करने के खिलाफ।

सूदखोरी के खिलाफ उन्होंने आंदोलन नहीं किया – आंदोलन किया महाजन की चार सौ बीसी के खिलाफ – जो कर्ज़ के बदले उनकी ज़मीन हड़पने लगे थे।

इस तरह 19 वीं सदी के किसान आंदोलनों की सबसे बड़ी कमी यह थी कि वे औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था को ठीक से जानते-समझते नहीं थे। और उनका कोई ठोस सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक कार्यक्रम भी नहीं था। उनमें किसी नए समाज की परिकल्पना नहीं थी, एक ऐसी परिकल्पना जो देश के तमाम नागरिकों को एक सामूहिक लक्ष्य के लिए संघर्ष करने के लिए एकताबद्ध करती और एक दीर्घकालीन राजनीतिक आंदोलन को जन्म देती।

20वीं सदी की शुरुआत से ही बदली हुई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने किसानों में एक नई चेतना का संचार किया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान बढ़ती मंहगाई तथा लड़ाई चन्दा, भरती चन्दा जैसी जबरन वसूलियों ने उनकी स्थिति और भी खराब कर दी। रौलेट एक्ट और जनरल डायर के कारनामों से साम्राज्यवाद का असली रूप उनके सामने आया। सन् 1917 की रूसी क्रांति में समाजवाद की विजय ने उन्हें उम्मीद की एक नई किरण दिखाई।

इन्हीं हालातों में किसानों ने एक बार फिर अपने आपको संगठित करना शुरू किया। जगह-जगह ज़मींदारी व औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ किसान-सभा व किसान संगठनों का गठन होने लगा तथा किसान बढ़-चढ़ कर न केवल साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में शामिल होने लगे बल्कि उन्होंने अपने वर्गीय हितों की लड़ाई भी शुरू की।

किसानों के ऐसे ही एक स्वतः स्फूर्त आन्दोलन का विवरण हम यहां दे रहे हैं। यह आन्दोलन सन् 1920 से थोड़ा पहले बिहार के भागलपुर ज़िले में एक अंग्रेज़ ज़मींदार – मिस्टर ग्रांट – के इलाके में छेड़ा गया था। इस विवरण को पढ़ते वक्त आपको केवल यह ध्यान रखना चाहिए कि यहां के ज़मींदार का अंग्रेज़ होना महज एक इत्तेफाक है क्योंकि ज़्यादातर ज़मींदार ग्रांट साहब की तरह के ही होते थे। देशी-विदेशी ज़मींदारों में ज़्यादा फर्क नहीं होता था।

इसी के साथ एक और बात – स्वामी सहजानंद ने इस वृत्तांत को सन् 1940 के आसपास लिपिबद्ध किया था। लिपिबद्ध करने के दौरान

उन्होंने अपने काफी सारे विचार इसमें शामिल किए हैं। इस विवरण को पढ़ते वक्त जिस बात का अहसास आपको सबसे ज़्यादा होगा वह यह कि ऐसे आंदोलन केवल उन्हीं परिस्थितियों में उभरते हैं जब सभी तरफ से दबाए और सताए किसानों के पास और कोई चारा नहीं होता। यह बात सोनबरसा गांव के किसानों द्वारा छेड़े गए इस आंदोलन के लिए लागू हो सकती है लेकिन सभी किस्म के किसान आंदोलनों के संदर्भ में यह बात सही नहीं है।

किसान आंदोलनों पर आज जो शोध हो रहे हैं उनसे यह पता चलता है कि किसान आंदोलन अधिकांशतः उन्हीं इलाकों में हुए हैं जहां किसानों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी। अत्यधिक दबाए-सताए लोगों के उठ खड़े होने के दृष्टांत हमें कम ही मिलते हैं। फिर भी स्वामी जी द्वारा वर्णित इस आंदोलन की सबसे बड़ी खास बात थी कि यहां के किसानों ने किसी भी किस्म की बाहरी सहायता नहीं ली और सभी तरह की परिस्थितियों से निपटने की तैयारी उन्होंने अपने आप की।

स्वामी सहजानन्द सरस्वती उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर ज़िले में पैदा हुए थे लेकिन उनकी कार्यस्थली मुख्य रूप से बिहार थी। व्यक्तिगत जीवन में एक संन्यासी होते हुए भी स्वामी जी ने न केवल देश के स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया था बल्कि वे अखिल भारतीय किसान सभा के सबसे प्रमुख नेताओं में से भी एक थे। उन्होंने किसानों की दुर्दशा को करीब से देखा और समझा था तथा उनकी अनेक लड़ाइयों का नेतृत्व भी किया था।

यह विवरण हमने उनकी पुस्तक '**किसान कैसे लड़ते हैं**' से लिया है। इस पुस्तक में स्वामी जी ने स्थानीय स्तर पर छेड़े गए ऐसे ही अनेक किसान आंदोलनों का ज़िक्र किया है।

— गौतम पाण्डेय

अगले हिस्से में स्वामी सहजानंद सरस्वती द्वारा लिखा गया विवरण दिया जा रहा है।

किसान कैसे लड़ते हैं?

मी सहजानद सरस्वती

भागलपुर ज़िले में, गंगा के किनारे, उत्तर की ओर सोनबरसा गांव है। गांव बड़ा है और ब्राह्मणों की बस्ती है। कुछेक को छोड़ साधारण श्रेणी के ही किसान वहां बसते हैं।

उस इलाके में मिस्टर ग्रांट की ज़मींदारी है। उनकी दो कोठियां नारायणपुर और लत्तीपुर में हैं। एक तो अंग्रेज़, दूसरे ज़मींदार। फिर तो 'करेला नीम पर चढ़ गया।' सो भी ग्रांट साहब कोई ऐसे-वैसे अंग्रेज़ नहीं। वे बड़े ही चलते-पुर्ज़े और तपाक वाले थे।

उनकी न सिर्फ भारत सरकार और प्रांतीय सरकार तक ही चलती थी, वरन ठेठ अंग्रेज़ी सरकार और पार्लियामेंट में भी उनकी धाक थी। फलत: यदि संयोग से कभी यहां उनकी सुनवाई न होती तो पार्लियामेंट के मेंबरों के द्वारा अपना काम बना लेते थे। इसीलिए यहां के छोटे-बड़े सभी हाकिम-हुक्काम उनसे डरते और पनाह मांगते थे। किसी के ऊपर उनकी ज़रा-सी नज़र बिगड़ी कि उसकी खैरियत नहीं।

परिणामस्वरूप वे अपनी बड़ी ज़मींदारी में जेठ के महीने के मध्यान्ह के सूर्य की तरह तपते थे। किसी किसान या मजलूम की क्या मजाल कि चूं करे। सभी थर्राते रहते और बिना जुबान हिलाए ही उनके ज़ुल्मों को चुपचाप सहते थे, क्योंकि 'न तड़पने की इजाज़त थी, न फर्याद की थी। घुटके मर जाएं, मर्जी यही सैय्याद की थी!' उनके छोटे-मोटे अमलों की नादिरशाही और मनमानी-घरजानी का ऐसी हालत में आसानी से अंदाज़ लगाया जा सकता है – वे किसानों के लिए यमराज से भी बढ़कर थे।

जैसा कि ज़मींदारों और सभी शासकों का कायदा होता है, ग्रांट साहब और उनके मैनेजर ने हर गांव के प्रभावशाली और चलते-पुर्ज़े लोगों को चुन-चुनकर अपना अमला बना लिया था और अपने किसी-न-किसी काम में लगा लिया था। फिर तो बाकियों के लिए कोई चारा न था, सिवाय इसके कि आंख मूंदकर उनका लोहा मानें और उनकी मर्ज़ी के खिलाफ सांस भी न लें। यदि गरीब और पीड़ित किसान अत्याचारों और ज़ुल्मों से ऊब कर कोई प्रतिकार करना चाहते भी, तो बेबस थे क्योंकि आज की तरह वह ज़माना किसान-सभा का न था कि ज़ालिमों को नाकों चने चबवाने

का काम आसानी से हो जाता। तब तो किसान अत्यंत विशृंखल और अप्रबुद्ध थे। हां, धीरे-धीरे उनमें जागृति आने ज़रूर लगी थी।

किसानों का तो एक ही बल है – संगठन। और वह उस समय उनमें था नहीं। अगर ऊबकर वे स्वभावत: संगठित होना चाहते भी, तो कोई मददगार न थे, प्रत्युत बाधक और फोड़ने वाले ही ज़्यादा थे। धनी और प्रभावशाली लोग तो साहब के डबल गुलाम पहले से ही बने हुए थे, और वे थे उनके पूरे नमक हलाल! इसलिए ज्यों ही बेचारे गरीब सुगबुगाते कि उस्ताद लोग आकर उन्हें ठंडा करने लग जाते। कभी भय, कभी तकदीर और कभी भगवान की बात लाकर उन्हें पस्त कर देते थे।

ग्रांट साहब गोरे तो हैं ही, तिस पर तुर्रा यह कि सात समुंदर पार आकर यहां ज़मींदारी कर रहे हैं! यह करम की बात और भगवान की मर्ज़ी नहीं तो और क्या है? उनके पूर्वजन्म की कमाई के बिना यह कैसे हो सकता है।

यही दलील उभड़ते हुए किसानों को ठंडा करने में जादू का काम कर जाती थी और सीधे-सादे किसान कलेजा मसोस कर रह जाते थे। साहब उन्हें उजाड़ डालेंगे, यह डर तो था ही।

लेकिन कहते हैं कि 'जुल्म की टहनी सदा फलती नहीं!' इसलिए एक न एक दिन मिस्टर ग्रांट का अत्याचार इन गरीबों को उभाड़े बिना नहीं रह सकता था। जब कई बार कोशिश करके भी वे साहब का बाल बांका न कर सके प्रत्युत स्वमेव तबाह हो गए, तो निराशा की दशा में अधीर बन गए और मतवालों की सी दशा में आ गए। और सोचने लगे कि साहब से जैसे हो निपटना ही चाहिए – चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

बिल्ली बड़ी ही कमज़ोर होती है और आदमी से डरकर भागती है। लेकिन आखिर सब चीज़ों की सीमा होती है और डर भी मजबूरन कभी छोड़ना ही पड़ता है। आप उसी बिल्ली को खदेड़ते-खदेड़ते किसी ऐसे मकान में पहुंचा दें जिसमें एक ही दरवाज़ा हो, भागने के लिए खिड़कियां या रास्ते न हों, अंत में वह दरवाज़ा भी बंद करके यदि आप बिल्ली के पीछे पड़ जाएं तो नतीजा क्या होगा? वहां भी जान बचाने की कोशिश वह करेगी ज़रूर और इधर-उधर कूदे-फांदेगी भी। मगर बचाव की कोई आशा न रहने पर वह भागना बंदकर, पीठ को दीवार की ओर और मुंह आपकी ओर कर, सारी शक्ति से गुर्राना शुरू करेगी, जैसे कोई बाघिन हो। इतना ही नहीं। आप पर लपकेगी भी। अगर जान लेकर आप न भागे तो पंजे से आपका पेट भी फाड़ेगी या कम-से-कम मुंह नोच लेगी ज़रूर।

जान बचाने के लिए अब तक वह भागती-फिरती थी। अब आप भागिए, नहीं तो खैरियत नहीं!

यह उल्टी बात क्यों हो गई? बिल्ली को बाघिन किसने बनाया? निहायत डरपोक और कमज़ोर बिल्ली में यह अपार शक्ति एकाएक कहां से आ गई?

असल में संसार का यही नियम है। ज़ुल्म की आंच में तपकर लोग इस्पात बन जाते हैं। उनकी कमज़ोरियां जल जाती हैं। जब चारों ओर से हारने के बाद ऊबकर मनुष्य जान पर खेल जाता और मतवाला (desperate) बन जाता है, तो उसके भीतर सोई हुई शक्ति का स्रोत एकाएक उमड़ पड़ता है। शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती। वह तो हमारे भीतर ही रहती है, ठीक जैसे दूध में घी रहता और दिखाई नहीं देता। मगर जिस प्रकार मथने से मक्खन के रूप में वह जमा होकर नज़र आता है, ठीक उसी प्रकार ज़ुल्म और अत्याचार की बार-बार की आवृत्ति प्रसुप्त शक्ति के लिए मथनी का काम करती है। प्रचंड निराशा के बाद जब 'मरता क्या न करता' के अनुसार हम जान पर खेलते हैं, तो वह शक्ति अनायास आगे आकर दुर्गा की तरह हमारी मदद करती है और शत्रु को पछाड़ती है। हिंदू लोग जो मानते हैं कि कलियुग के बाद सत्ययुग आता है, उसका यही अर्थ है। पहले दर्जे के परस्पर विरोधी पदार्थ मिल जाते हैं (extremes meet) – इस अंग्रेज़ी कहावत का भी यही आशय है।

इसी नियम के अनुसार आखिर सोनबरसा के किसान भी तैयार हो ही गए। गंगा के दियारे की ज़मीन पर झगड़ा था। हज़ारों बीघे फर्स्ट क्लास की ज़मीन थी। वह तो सोना थी। किसान कहते कि ज़मीन हमारी है, गांव वालों की है, साहब के मैनेजर कहते कि यह तो साहब की है। सब उपाय करके किसान थक गए। मगर

नतीजा कुछ न हुआ। साहब टस-से-मस न हुए।

बेशक, कानून तो है। मगर पीड़ितों के लिए तो वह ठीक वैसे ही है, जैसे कि वन में पका बेल बानर के लिए! गरीबों की आखिर कानून मदद ही क्या करेगा? वह तो अमीरों और धनियों के लिए है। कचहरियां उन्हीं की, हाकिम उन्हीं की बातें आसानी से सुनते, बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर उन्हीं को मिलते और पुलिस तथा फौज उन्हीं की सहायता के लिए चटपट पहुंच जाती है। इसीलिए कहते हैं कि रुपया कानून की छाती पर कोदों दलता है (money rules the law), फलत:, इस झमेले में पड़कर किसान सिर्फ घर का आटा गीला करते हैं। उनके हाथ कुछ लगता नहीं। जहां देखो रुपए की पूछ है और यही चीज़ गरीबों के पास नहीं होती। थाने से ही पैसे का प्रसंग शुरू होकर ठेठ ऊपर तक चला जाता है!

निरुपाय होकर गांव के सभी किसान एक दिन एकत्र हुए और सोचने लगे कि क्या किया जाए और उस ज़मीन पर अपना कब्जा कैसे जमाया जाए। देर भी नहीं कर सकते थे क्योंकि ज़मीन पर जंगल की तरह सरसों लगी थी और पक चुकी थी, जो देर होने से गिर कर खत्म हो जाती। सभी उदास थे। कोई अक्ल न चलती थी।

इतने में रामरूप कुमर नामक एक गठीले पर अपढ़ किसान ने कहा कि हम तो हज़ारों हैं और साहब हैं अकेले। नौकर-चाकर मिला कर पचास-सौ होंगे। यदि पुलिस या फौज लाएं तो ज़्यादा-से-ज़्यादा दो-तीन सौ हो जाएंगे। फिर भी तो हम उनसे कई गुना रहेंगे। ऐसी हालत में चलो जान पर खेलकर सभी चलें और सरसों काट लें। आखिर भूखों मरने से और दवा या वस्त्र के बिना घुल-घुलकर जान देने से तो अच्छा है कि या तो सरसों काटकर घर में धरें या गोली के घाट उतर जाएं। मर जाने पर तो भूख, प्यास, बीमारी, जाड़ा आदि सभी से पिंड छूट ही जाएगा। यदि जेल चले गए तो वहां भी हमारे मकान से कहीं सुंदर पक्का मकान, हमारे खाने से लाख दर्जे अच्छा खाना, और हमारे कपड़ों से कई गुना अधिक और अच्छा कपड़ा मिलेगा ही। वहां तो दवा भी मिलेगी। यहां तो मर जाते हैं और कोई पूछने वाला नहीं? फिर परवाह किसकी? असल में हमारा शत्रु यह भय ही है और इसे ही मार भगाना हमारा पहला फर्ज़ है। जो मौत और जो जेल इतनी अच्छी चीज़ें हैं जो हमारी हज़ार दिक्कतों की आसान दवाइयां हैं, उन्हीं से भय?

सब की आंखें अकस्मात खुल गईं और मालूम पड़ा कि समस्या सुलझ गई। सबके कलेजे बांसों उछल पड़े

और सबों में मुर्दानगी की जगह मर्दानगी उमड़ पड़ी। सभी बोल उठे कि ठीक है, ठीक है, अब लिया, तब लिया। अब तो मामला सर ही है। फिर रामरूप ने ही प्रश्न किया – मान लीजिए ज़मीन पर कब्ज़ा हो गया, तो भी बंटवारे के समय दिक्कत होगी और हम लोग आपस में ही झगड़ पड़ेंगे। फिर तो बना बनाया काम चौपट हो जाएगा और साहब की बन आएगी। आखिर आज तक वह हमारी ही फूट के बल पर बैठा है न? वह तो दोबारा उसी फूट और आपसी कलह से लाभ उठाएगा और बिल्लियों के झगड़े में बंदर बनेगा।

एक बात और। जब हमें साहब जैसे ज़बर्दस्त शत्रु से भिड़ना और उसे अच्छी तरह पछाड़ना है, तो पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। लाठी चलाने की नौबत होगी, जेल जाना होगा, मरना होगा, रुपए खर्चने होंगे और समय-समय पर अनेक ऐसे ही काम करने होंगे। कब कौन कितने आदमी, कितने रुपए या कितना सामान देगा इसका भी निपटारा अभी हो जाना चाहिए ताकि निश्चिंत होकर हमारी लड़ाई चल सके, नहीं तो बीच में ही गड़बड़ी होगी और आग लगने पर कुंआ खोदने का सवाल पैदा हो सकता है।

यह बात भी सभी को पसंद आई और सबने कहा – भाई रामरूप जी, आप ही यह गुत्थी भी सुलझाइए और आज से आप ही हमारे नेता बनिए। हमने मंगनी और उधार के बाहरी नेता बहुत देखे। मगर कुछ हुआ-हवाया नहीं। वे पढ़े-लिखे ज़रूर होते हैं, और आप अनपढ़ हैं। मगर आखिर गेहूं, चावल, चना, घी, मलाई आप और हम ही तो पैदा करते हैं न? भलेमानस, ये पढ़े-लिखे कब ऐसा करते हैं? वे तो हमारी कमाई का ही घी-हलुआ खाकर, लेक्चरों और बड़ी-बड़ी बातों के ज़रिए, सिर्फ उसकी बदहज़मी मिटाते हैं। आखिर शरीर से कोई काम तो वे लोग करते नहीं, यहां तक कि पैदल घूमते-फिरते भी नहीं। टहलने भी चलते हैं तो उनके बजाए प्रायः उनकी मोटर या घोड़ागाड़ी ही टहलती है। फिर ये चीज़ें पचें तो कैसे? इसलिए उन्हें लेक्चर देना पड़ता है। उससे 'एक पंथ दो काज' होता है। अन्न की बदहज़मी के साथ ही अक्ल की बदहज़मी मिट जाती है। यदि न बोलें तो उनकी बहुत ज़्यादा पढ़ी-लिखी बुद्धि उनके पेट और दिमाग के भीतर ही उछल-कूद मचाती रहती है। लेकिन हम तो अपनी मोटी बुद्धि से यही जानते हैं कि हज़ार लेक्चरों से न तो एक दाना गेहूं, चावल पैदा होता है और न पैसे भर घी, दूध। और इन चीज़ों के बिना तो दुनिया का, उन नेताओं का खुद भी काम नहीं चलता। लेक्चर के बिना तो कोई भूखों मरता नहीं। इसलिए हम चाहते हैं कि अब गेहूं, घी, दूध की तरह

नेता और लीडर भी हम अपने ही बीच पैदा करें। तभी हमारे कष्ट दूर होंगे। हमारे कष्टों को हमारा ही आदमी समझ सकता है। बाहरी क्या समझेंगे? 'जाके पांव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई?' सब कुछ पैदा करके भी भूखों हम मरते हैं या हमारे नेता? फिर वे क्या समझने लगे कि हमें क्या तकलीफें हैं? इसलिए हमारा नेता हम में से होना चाहिए।

सभी को यह बात अच्छी लगी और हां, हां बोल बैठे सबके सब। तब रामरूप ने कहना शुरू किया – आज त्याग और बलिदान का समय है। हो सकता है इस समय 'सबसे ज़्यादा त्याग हम करेंगे, हम करेंगे' ऐसी होड़ या ऐसी प्रतियोगिता दुर्भाग्य से हममें परस्पर न हो और बलिदान में बड़ा हिस्सेदार बनने को शायद कोई तैयार न हो। फिर भी ज़मीन मिलने पर तो ज़रूर ही 'हम धनी हैं, बड़े हैं, इसलिए हमें ज़्यादा मिले और फलां आदमी गरीब है, उसे कम मिले', 'हमारे पास ज़्यादा हल-बैल हैं और हमारा परिवार भी बड़ा है, मगर अमुक सज्जन के पास इन दोनों बातों में से एक भी नहीं है, इसलिए हमें ज़्यादा और उन्हें कम ज़मीन मिले', ये बातें उठेंगी। इसलिए मैं चाहता हूं कि आदमी और परिवार का ख्याल न करके सिर्फ हल-बैलों के विचार से शुरू से ही हिस्सेदारी तय कर दी जाए। यह सच भी है कि आखिर ज़मीन जोती जाती है हल-बैलों से ही, न कि धन और परिवार से। इसलिए आज ही हम क्यों न तय कर लें कि ये हल ही हिस्सेदार है? फिर गांव भर के हलों को, या फिलहाल दो बैल के हिसाब से बैलों को ही गिनकर हिस्सेदारों की संख्या यहीं पर हम निश्चित क्यों न कर लें? आगे जब-जब रुपए की ज़रूरत हो, लाठी चलाने वालों का काम पड़े, जेल-यात्रियों की आवश्यकता हो, या मौत के आलिंगन का मौका आए तो इन्हीं हलों के हिसाब से सभी लोग अपना हिस्सा बेखटके क्यों न चुकाया करें?

यह बात भी सबने पसंद की और कहा – भाई रामरूप जी ने तो आज सचमुच ही वास्तविक किसान नेता होने का परिचय दे दिया। उन्होंने हमारी सारी उलझनें सुलझा दीं। भला यदि कोई बाहरी नेता होता तो ये भीतरी बातें क्या समझता? यह सुलझन और यह रास्ता तो ठीक हमारे ही लायक है। ओह! इसे हम कितनी आसानी से समझ गए! बस अब कोई भी विवाद और बखेड़ा आगे खड़ा होगा ही नहीं। सचमुच ही लड़ाई में तो बड़ा हिस्सा कोई भी नहीं लेना चाहता। यही मानव स्वभाव है। मगर ज़मीन के बंटवारे के समय अवश्य ही यह तूफान खड़ा होता, जिसका समाधान हमारे भाई ने, हमारे नेता ने, कर दिया। हम तो हल के हिसाब से ही त्याग और बलिदान में

हिस्सा लेते-लेते इसी हिस्सेदारी के अभ्यासी बन जाएंगे, क्योंकि इसमें समय लगेगा। जल्दी तो यह झमेला निपटेगा नहीं। आखिर ग्रांट साहब कोई साग-मूली तो हैं नहीं कि जल्दी ही हम लोग उन्हें आसानी से गटक जाएंगे, या वह स्वयं मुरझा जाएंगे। हमें तो लोहे के चने चबाना होगा। अतः इसके लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए। ऐसी दशा में हम खामख्वाह इस हल वाली हिस्सेदारी के अभ्यस्त हो जाएंगे। फलतः बंटवारे के समय न तो किसी को ख्याल ही होगा और न हिम्मत ही होगी कि ज़्यादा या कम का दावा करे!

इसके बाद फौरन हलों की गिनती की गई। सारे गांव में कुल साढ़े तीन सौ हल ठहरे। बस ये ही साढ़े तीन सौ हिस्सेदार ठहराए गए और उस दिन सभा बर्खास्त हुई।

मगर यह बात छिपने वाली तो थी नहीं। साहब के दलाल और टुकड़खोर फौरन कोठी में पहुंचे और उन्होंने सारी दास्तान उन्हें सुना दी। साहब भी हैरान थे कि यह क्या हो गया! न कोई नेता आया और न मीटिंग वगैरा हुई, फिर एकाएक यह क्या हो गया? उनके दिमाग में यह बात आ ही न सकी। उनके होश-हवास उड़-से गए।

उन्हें ताज्जुब हुआ कि यहां भी सोवियत रूस की प्रथा एकाएक कैसे टपक पड़ी? किसने यह फितूर पैदा किया? उन्होंने सोचा कि चुपके से कोई बाहरी आदमी गांव आया होगा और वह यह मंत्र देकर चला गया होगा।

उन्होंने अपने जासूसों और दलालों से रह-रह कर पूछना शुरू किया – सच बताओ, कोई बाहरी आदमी आया था या नहीं? सबने एक स्वर से ना की। साहब को विश्वास न हुआ और सैकड़ों ढंग से जांचा-पूछा। मगर आखिर कोई आया हो तब न! लोगों ने कहा कि नेता या बहकाने वाले कोई सुई थोड़े ही हैं कि जो चाहेगा छिपाकर रख लेगा।

बात भी तो ठीक ही है। मगर पूंजीवालों, ज़मीदारों, या गैरों पर शासन करने वालों के दिमाग में तो सदा यही खब्त सवार रहता है कि पीड़ितों को, किसानों-मज़दूरों और दूसरे कमाने वालों को बाहरी लोग ही भड़काते और बहकाते हैं। नहीं तो ये बेचारे तो सीधे-सादे होते हैं। ये तो कभी भी धनियों, ज़मींदारों या सरकार का विरोध करना जानते ही नहीं।

इन शासक और शोषक भलेमानसों के दिमाग में यह मोटी बात आती ही नहीं कि जिसे बीमारी होती है वह स्वयं दवा के लिए चिल्लाता है। जो भूखा-प्यासा होता है, वह खुद अन्न-पानी की पुकार मचाता है। आखिर किसान-मज़दूर भूखे-नंगे तो होते ही हैं। बीमारियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह

वे ही हज़ारों में मर भी जाते हैं न कि नेता। शोषक यह भी नहीं सोच सकते कि तेज़ भूख लगने और भयंकर दर्द पैदा होने पर कुंभकर्णी नींद भी टूट ही जाती है। सोए हुए लोग भी भूख और दर्द की शांति का उपाय ढूंढने लगते हैं। वे खुद डॉक्टरों को बुलाते हैं। न मिलने पर कोई-न-कोई रास्ता निकालते ही हैं। जादू-टोना और जंतर-मंतर की सृष्टि इसी आतुरता, और अन्य उपाय न मिलने का ही तो फल है। कहते भी हैं कि ज़रूरत आविष्कारों की जननी है।

शोषितों और पीड़ितों की ज़रूरतों ने ही नेताओं को पैदा किया है, न कि नेताओं ने ज़रूरतें पैदा की हैं। इसलिए बाहरी नेताओं पर रोक लग जाने पर पीड़ितों के भीतर से ही उनके नेता पैदा होते हैं। वे ही धुआंधार लड़ाई चलाते भी हैं। बाहरी नेता तो सुलह-सपाटे की बात भी सोचते हैं मगर उनके भीतर के नेता तो एक ही बात जानते हैं कि या तो पीड़ित और शोषित ही रहेंगे, या उनके लूटने वाले ही! दोनों तो रह नहीं सकते, क्योंकि बाहरी नेताओं की तरह किताबें पढ़कर तो सब बातें वे जानते नहीं। वे तो स्वयं भुक्तभोगी होते हैं।

यह भी स्वाभाविक ही है कि बीमार या भूखा आदमी रोग और भूख के साथ समझौता करने की बात सोच ही नहीं सकता। किसान और मज़दूर यह बखूबी जानते हैं कि उनकी बीमारी और उनकी भूख के कारण कौन हैं, उनकी कमाई को कौन लूटते हैं। इसमें किसी बाहरी आदमी के समझाने की ज़रूरत ही नहीं।

इसलिए आखिर मिस्टर ग्रांट को मानना ही पड़ा कि गांववालों ने बिना किसी बाहरी इशारे या मदद के खुद-ब-खुद यह काम किया है और अब हमें सिर्फ उन्हीं से सीधे लड़ना होगा। यह काम ज़रा कठिन है, यह भी वह समझने लगे। बाहरी लोगों पर तो मैजिस्ट्रेट साहब या पुलिस के ज़रिए कोई रोक लगाकर ही आसानी से काम चल जाता है। और नहीं हुआ तो सहस्त्रमुखी कानून की किसी धारा में ही लाकर उन्हें पकड़वा दिया। वो होते भी हैं एक-दो ही, मगर यहां तो आफत है। सैकड़ों हैं, हज़ारों हैं, गांव का गांव ही है। फिर इन पर कोई नोटिस भी तो आसानी से नहीं लग सकती है।

बहुत सोच-साचकर अंत में उन्होंने तय किया कि हथियारबंद पुलिस लाकर ही उन्हें रोक सकते हैं, हालांकि इसमें खर्च काफी होगा – स्थानीय पुलिस थोड़े ही है कि बिना कौड़ी खर्चे ही दौड़ी चली आएगी। हथियारबंद पुलिस बुलाने में तो पैसे कटेंगे। मगर किया क्या जाए? मजबूरी है।

उसने यह भी सोचा कि जब इस प्रकार का संगठन है, तो हथियारबंद जवान भी तो आखिर किसानों के ही

बच्चे हैं, सो भी इसी ज़िले या प्रांत के हैं। कहीं वे भी किसानों में न मिल जाएं! इसलिए हथियारबंद गोरखे ही लाना ठीक है।

इसके बाद फौरन मैजिस्ट्रेट के पास खुद ही पहुंचे और सारी कहानी सुना कर बारह गोरखों की मंजूरी ली। वे रवाना भी हो गए। साहब ने समझा कि इन बिगड़े दिमाग वालों को सदा के लिए दुरस्त करना है, नहीं तो रह-रह कर यह बला सिर उठाती ही रहेगी।

इधर किसानों को भी सब बातें मालूम हो गईं। उन्होंने भी देखा कि मामला बेढब है!

इतने में खबर लगी कि हथियारों से लैस गोरखे आए हैं। अंत में सचमुच ही ऐन गंगा की करारी धारा के किनारे उसी झगड़े वाली ज़मीन के पास वे लोग पहुंच भी गए।

सोनबरसा में सनसनी थी। घबराहट भी थी। मगर रामरूप कुमर बेफिक्र थे। जब किसानों ने यह खबर उन्हें दी, तो उन्होंने कहा कि फिलहाल तीन-तीन आदमी के हिसाब से फौरन कम-से-कम एक हज़ार आदमी कमरबंद जमा हो जाएं।

लेकिन असल सवाल तो यह था कि राइफलों और बंदूकों के सामने खाली हाथ या लाठी लिए ये हज़ार आदमी आखिर करेंगे ही क्या? ये तो बकरे की तरह केवल बलिदान हो जाएंगे। इसका क्या उपाय?

रामरूप ने कहा – उपाय ज़रूर होगा। घबराने की क्या बात? हम तो देहाती किसान हैं और उपाय भी वैसा ही करेंगे जो देहाती हो, सुलभ हो।

मगर लोग अचंभे में थे। उनके दिमाग में यह बात आती न थी कि राइफलों और बंदूकों के मुकाबले देहाती पदार्थ क्या हो सकता है! यही कानाफूसी चारों ओर हो रही थी।

तब तक रामरूप ने कहा कि हमारे गांव में सूखे बांस तो कटे-कटाए बहुत होंगे और होंगे पचासों हाथ लंबे भी। सभी ने कहा– हां, बांसों की क्या कमी?

– और किरासन का तेल और फटे-पुराने कपड़े?

उत्तर मिला – ये दोनों भी जितना चाहिए मिल सकते हैं।

इस पर रामरूप ने हुक्म दिया – बात की बात में सैकड़ों बांस, किरासन तेल और फटे-पुराने कपड़े खूब जमा किए जाएं।

लोगों ने सुनते ही पलक मारते, तीनों चीज़ों का ढेर लगा दिया।

फिर हुक्म हुआ कि पचास बांसों के पतले छोरों पर ये कपड़े खूब ज़्यादा लपेटे जाएं, ताकि घंटों जलते रहें और खत्म न हों।

लोग ताज्जुब में थे कि इस होली का क्या मतलब? इससे गोरखों की राइफलें कैसे मानेंगी? मगर अपने नेता

की आज्ञा फौरन पूरी की गई।

फिर, सभी बांसों के कपड़े किरासन तेल से तर कर दिए गए।

अब रामरूप ने कहा – हज़ारों आदमी तैयार हो जाएं, मुकाम पर चलने के लिए! याद रहे कि सरसों काटने के लिए सब के पास एक-एक हंसिया भी ज़रूर रहे!

बात-ही-बात में सब लोग तैयार हो गए। उसके बाद हरेक बांस के कपड़े में आग लगा दी गई और 'इंकलाब ज़िंदाबाद' के नारों के साथ दस-दस बीस-बीस आदमियों ने, जैसा कि रामरूप ने कहा, एक-एक बांस उठा लिया और उन सबों के जलते सिरे आगे करके सभी रवाना हो गए। दिन में एक साथ पचास बांसों से निकलने वाली लपट सभी को चकाचौंध में डालने वाली हो गई।

किसान फिर भी आश्चर्य में थे कि यह क्या तमाशा है!

पलक मारते ही गांव से निकल उस ज़मीन के नज़दीक वे लोग जा पहुंचे, जहां हथियारबंद गोरखे तैनात थे। दूर से साहब भी देख रहे थे। उन लोगों ने एक साथ पचासों लुक्काड़ जलते देख सोचा कि यह क्या? हज़ारों आदमी तो लुक्काड़ के पीछे थे। उनका गिरोह साफ नज़र आता न था। न तो गोरखे और न साहब ही इसका रहस्य समझ सके। फलतः घबरा गए। क्या करें क्या न करें – वे लोग इसी आगा-पीछी में थे।

राइफलें या बंदूकें सीधी भी न कर सके थे कि लुक्काड़ों वाला दल उनके पास आ गया। अब तो घबरा कर भागने की सोचने लगे क्योंकि हज़ारों के बीच जान का खतरा था। राइफल या बंदूक ठीक-ठीक चला सकना भी असंभव था। साहब तो ज़रा दूर थे। इसलिए वह तो भाग गए। मगर हक्के-बक्के गोरखों की क्या दशा हुई, इसका कोई प्रमाण न मिल सका। इतना सभी कहते हैं कि वे लापता हो गए।

कुछ का कहना है कि जान बचाने के लिए सभी गंगा में कूद गए और डूब गए, क्योंकि धारा बहुत तेज़ थी, गहराई भी काफी थी। दूसरों ने कहा कि किसानों ने ही सबों को उठाकर बीच धारा में फेंक दिया और सभी डूब मरे। यह भी ख्याल है कि तैरते-तैरते सभी, या कुछ लोग, कहीं दूर जा निकले और बच गए। मगर इतना सही है कि जिस काम के लिए वे आए थे वह तो नहीं ही हुआ। किसानों ने उनकी राइफलों एवं बंदूकों का बहुत ही सुंदर देहाती, पर लासानी, जवाब ढूंढ निकाला! अनपढ़ देहाती दिमाग ऐसे ही होते हैं, बशर्ते कि मन में पक्का-पक्की ठान लें!

इस प्रकार बिना एक बूंद रक्त बहाए, एक लाठी या गोली खाए और

एक भी जान दिए, किसानों की विजय हुई। फौरन ही सारी-की-सारी सरसों उन्होंने काटकर घर पहुंचा दी। देर होने में खतरा था कि साहब कोई और तूफान करता और वह खेत में ही पड़ी रह जाती।

अब तो पचासों हज़ार रुपए की संपत्ति किसानों के घर जा पहुंची। वे उन्हीं रुपयों से साहब से बहुत दिनों तक निपट सकते थे। उन हज़ार आदमियों को सारी सरसों काटने और ढोने में देर भी न लगी। हाथों-हाथ काम हो गया। यही तो सामूहिक शक्ति की महिमा है। अलग-अलग काटते तो न जाने कितनी देर होती और कितने पचड़े खड़े हो जाते!

उधर साहब की जान तो बची, मगर समूची कोशिश विफल हो जाने से उन्हें मर्मांतक वेदना हुई। खून-खराबा वगैरा का केस भी नहीं कर सकते थे। सबूत ही क्या था? गोरखे मरे या बचे, इसका कोई प्रमाण तो था नहीं। फिर किसने किसको मारा, यह भी बताने वाला कोई नहीं था। वहां तो जादू का काम हुआ और रामरूप की गंवई बुद्धि ने बाजी मार ली।

साहब ने पीछे हज़ार कोशिशें की कि किसानों को फंसाएं। गोरखों के खून को साबित करने के लिए उन्होंने आकाश-पाताल एक कर दिया। बहुत छान-बीन की गई। खूब दौड़-धूप हुई। मगर नतीजा कुछ न निकला। सोन-बरसा का एक कुत्ता भी साहब की ओर से न भौंकता था। पास-पड़ोस के लोग भी साहब से खुश थोड़े ही थे, समय-समय पर उसने सबों को परेशान जो किया था!

जो उनसे खूब हिले-मिले थे, वे भी किसानों की अभूतपूर्व विजय से अत्यंत प्रभावित थे। फलतः उनके विरुद्ध जुबान हिलाने की हिम्मत न कर सकते थे। असल में विजय का परिणाम ऐसा ही होता है कि शत्रु भी विरोध में

कुछ करने को तैयार नहीं हो सकते। *समस्त वायुमंडल ही बदल कर कुछ* और हो जाता है। इसीलिए तो कहते हैं कि जीतने वाले के साथी सभी हो जाते हैं, पर हारने वाले के कोई नहीं।

इस प्रकार रामरूप के नेतृत्व में किसानों ने उस ज़मीन पर दखल जमा लिया। साहब की हिम्मत ही न हो सकी कि पास आएं। गांव में जो लोग भीतर से उनके साथी थे, वे भी अपूर्व विजय और निराले संगठन को देखकर दब गए। आगे चलकर सारी-की-सारी ज़मीन साढ़े तीन सौ हलों में बराबर बांट दी गई। किसी ने कुछ भी चीं-चपड़ न की। सबने खुशी-र अपना-अपना हिस्सा स्वीकार कर लिया।

उसके बाद जब कभी भी मुकदमा लड़ने या लाठी चलाने की नौबत हुई तो हलों के हिसाब से अनायास ही काफी रुपए और काफी जवान जमा हो जाते थे। फिर तो विजय-ही-विजय थी।

एक बार मैं वहां गया था। मेरा *सामान दूसरी जगह पहुंचाने के लिए* बैलगाड़ी की ज़रूरत हुई। किसी ने रामरूप से कहा। फिर क्या था। साढ़े तीन सौ गाड़ियां आने की नौबत हो गई। मगर हमने रोका कि ज़रूरत ही क्या है!

हमने जब-जब रामरूप को देखा तब-तब हम खुश हुए। पूर्ण शांत और तगड़ा जवान, सबसे हंसकर बोलने वाला। किसानों को ऐसा ही लीडर तो चाहिए, न कि हम लोगों जैसे बातूनी और ढपोरशंख।

सोनबरसा का यह संगठन दुर्भेद्य चक्रव्यूह था, जिसके भीतर किसान अकंटक राज्य करते थे। पीछे सुना कि बहुत दिनों के बाद गांव के कुछ धनियों को घूस देकर साहब ने फोड़ा और किसानों पर जैसे-तैसे केस चलवाए।

मगर ग्रांट साहब और उनकी ज़मींदारी तकुवे की तरह सीधी तो हो ही गई!

स्वामी सहजानन्द सरस्वती: (1889-1950) उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर ज़िले में पैदा हुए। एक संन्यासी होते हुए भी स्वामी जी ने न केवल देश के स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। वे अखिल भारतीय किसान सभा के सबसे प्रमुख नेताओं में से भी एक थे स्वामी जी की कुछ अन्य रचनाएं हैं – मेरा जीवन संघर्ष, किसान क्या करे, खेत मजदूर, क्रांति और संयुक्त मोर्चा आदि।
गौतम पांडेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन समूह से जुड़े हैं।
सोनबरसा गांव के किसानों के संघर्ष की गाथा 'किसान कैसे लड़ते है?' पुस्तक से साभार। इस पुस्तक के प्रकाशक ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली हैं।

जादूगर के साथ एक दिन

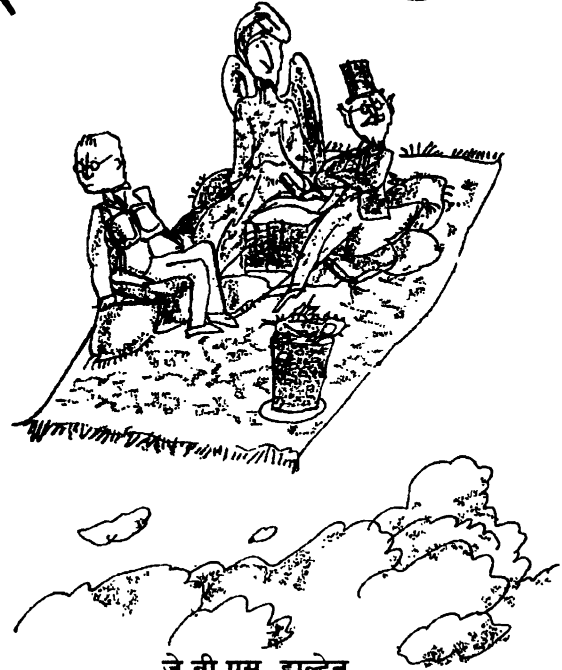

जे.बी.एस. हाल्डेन

मैंने पहले कभी आपसे अपने एक मित्र लिकी के यहां के रात्रिभोज का ज़िक्र किया था। लिकी पेशे से जादूगर हैं और लंदन में रहते हैं। उस रात उनसे विदा लेते हुए मैंने उनके साथ एक पूरा दिन बिताने का वादा किया था। आज मैं उस 'अजूबे' दिन के बारे में बताने जा रहा हूं।

बरसों पहले मैंने क्रिसमस की पूर्व संध्या पर जुराबें लटकानी छोड़ दीं थीं। क्रिसमस के मौके पर ईसाई समुदाय में जुराबें लटकाने की परंपरा है। ऐसा माना जाता है कि उस दिन सोते समय अपनी मनोकामनाएं सोचकर जुराबें लटका देनी चाहिए। परम पिता ईश्वर क्रिसमस के मौके पर उनमें उपहार भरकर आपकी मनोकामनाओं की पूर्ति कर देता है। लेकिन जैसे ही मैं क्रिसमस

की सुबह उठा, यह देख कर चकित रह गया कि मेरी एक जुराब पलंग के पैताने लटकी हुई थी। और जब वह जुराब खुद-ब-खुद खड़ी होकर मेरी तरफ चलने लगी तो मैं ठगा-सा ही रह गया। इतना ही नहीं वह तो मेरी छाती पर चढ़ गई और उसके झुककर सलाम करते ही भीतर से एक सीलबन्द लिफाफा, एक अण्डा, एक रत्नजड़ित टाई पिन, साथ में एक फल जिसे मैंने बाद में पहचाना कि यह तो सीताफल है और एक छोटी-सी डायरी, बाहर निकल आए। इनको देखते ही मैं समझ गया कि ऐसा उपहार जादूगर लिकी के अलावा और कोई भेज ही नहीं सकता। मैंने लिफाफा खोला तो पाया कि इसमें तो लिकी के साथ दिन बिताने का निमंत्रण था। साथ ही लिफाफे में रखे पत्र में अंडे, डायरी और टाई पिन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां थीं। टाई पिन और डायरी पर इस तरह का जादू किया हुआ था कि वे गुम ही न हो सकें। मेरे लिए यह वरदान ही था क्योंकि मैं अक्सर अपनी डायरी और टाई पिन खो देता हूं।

निमंत्रण में बताए दिन मैं नाश्ता करके लिकी के फ्लैट पर पहुंचा। लिकी के जिन्न अब्दुल मक्कार ने दरवाज़ा खोला। वह पीतल के बटन वाली वर्दी पहने था। उसने मेरा कोट और हैट थाम लिए ताकि उन्हें कहीं लटकाया जा सके। विचित्र बात यह थी कि यह सब उसने मुझे छुए बिना, दो फुट की दूरी से ही कर दिया। हालांकि यह सब मुझे अटपटा लग रहा था लेकिन मैं जल्दी ही इस घर की विचित्रताओं के प्रति सहज हो गया था।

लिकी ने बड़ी गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया। आग पर आसीन ड्रेगन पॉम्पी के स्वागत में भी वही उत्साह था। मुझे देखते ही उसने अपने पंख हिलाने शुरू कर दिए जिससे पूरे कमरे में धुआं फैलने लगा। लेकिन लिकी के जादुई छड़ी उठाते ही वह अपने दोनों पंजों के बीच सिर रखकर चुपचाप पसर गया।

लिकी ने बताया कि दोपहर का भोजन जावा द्वीप में करने का इरादा है। लेकिन उसके पहले उन्हें एक काम निपटाना था। "क्या आप मेरे साथ आ सकेंगे?" उन्होंने मुझसे पूछा, "अगर ऐसा संभव नहीं हो तो आप यहीं रुक जाइए और रुखसत से पाइप पीने का मज़ा लीजिए, या मनोरंजन के लिए मैं कुछ और इंतज़ाम किए देता हूं।"

"अगर आपके काम में कोई बाधा न हो तो मैं आपके साथ चलना पसंद करूंगा", मैंने लिकी से कहा।

"बिल्कुल नहीं, बल्कि आपके साथ रहने से मुझे प्रसन्नता होगी। परन्तु साथ चलने के लिए आपको अदृश्य होना पड़ सकता है। बेहतर होगा कि आप इसका अभ्यास कर लें क्योंकि

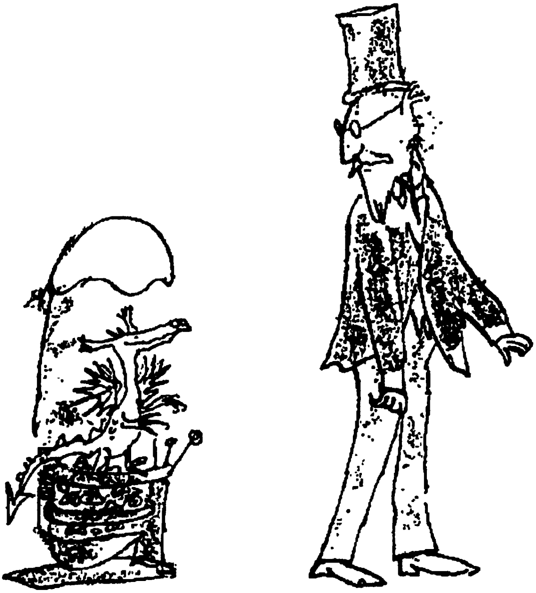

पहली बार ऐसा करना कुछ अजीब-सा लगता है। यह काली टोपी अपने सिर पर रखकर इस कमरे के एक-दो चक्कर लगाएं। नीचे देखने पर आपको मितलाहट महसूस हो सकती है। इसलिए जब लगे कि आप संतुलन खो रहे हैं तो बिल्कुल सामने की तरफ देखें।" लिकी ने मुझे समझाया।

लिकी ने मुझे चोटीवाली, एक काली टोपी दी। यह क्रिसमस के तोहफों के साथ मिलने वाली कागज़ की टोपी जैसी ही थी। ऐसा काला रंग मैंने आज तक नहीं देखा था। यह काले रंग के साधारण कागज़ या कपड़े के रंग जैसी तो बिल्कुल नहीं थी। यह तो कोयले से भी काली – एकदम स्याह सुराख जैसी थी। 'वह किस चीज़ की बनी है' देखकर बता पाना मुश्किल था या यह कि 'उसकी सतह खुरदुरी है या चिकनी'? और छूने पर नर्म-गर्म रबर जैसी लग रही थी। बहरहाल, टोपी पहनते ही मेरी बांह गायब हो गई। आसपास की चीज़ें अजीब-सी दिखने लगीं। मैं सोच भी नहीं पाया कि ऐसा क्यों हो रहा है? तभी मैंने उन दो भूतहा नाकों को गायब होते देखा जो बिना प्रयास किए मुझे लगातार दिखती रहती हैं। अदृश्य होने के कारण मेरी आंख की पलकें और नाक पारदर्शी हो चुके थे। इसके बाद मैंने अंदाज़ लगाने की कोशिश

की कि मेरा धड़ और पैर कहां होने चाहिए, लेकिन मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। चक्कर आने की वजह से मैंने घबराहट में अपने अदृश्य हाथों से मेज़ पकड़ने की कोशिश की; किसी तरह खुद को संतुलित किया और सामने की ओर नाक की सीध में देखने लगा। कुछ प्रयास के बाद मैं कमरे में टहलने की स्थिति में आ गया।

मेरे मेज़बान ने कहा, "बाहर चलते समय टोपी को अपनी जेब में रख लें, फिर आप जब भी अदृश्य होना चाहें इसको हैट के नीचे पहन लें। इससे आप हैट समेत अदृश्य हो सकेंगे।"

बाहर निकलते समय हॉल में कोई नहीं था, फिर भी हैट और कोट खूंटी से उड़कर मेरे पास आ गए।

टैक्सी में बैठते ही लिकी ने मुझसे कहा, "हम एक कुत्ते की समस्या सुलझाने जा रहे हैं जिसने उधम मचा रखा है। जो कोई दिख जाए, वह उसे काटने दौड़ पड़ता है। यदि मैंने इसके बारे में कुछ नहीं किया तो पुलिस उसे मार डालेगी। दरअसल लंदन में बड़े स्तर पर जादू करना बहुत मुश्किल है। ऐसा करने पर लोगों का ध्यान खिंचेगा और वे उमड़कर मेरे पास आने लगेंगे। मुझे इस तरह की शोहरत बिल्कुल ही पसंद नहीं है। परन्तु फिर भी मैं औरों के लिए उपयोगी होने की कोशिश करता हूं। जैसे अपने इस टैक्सी ड्राइवर को ही देखें। क्या आपको नहीं लगता कि इसके चेहरे के दाग हट जाएं तो यह खूबसूरत दिखने लगेगा?"

सही में, ड्राइवर के चेहरे पर इतने ज़्यादा मुंहासे थे कि दवाई कम्पनियां 'मुंहासा निवारण दवाओं' के विज्ञापन में उसका बखूबी इस्तेमाल कर सकती थीं। इस बीच लिकी ने छाता अपने हाथ में लिया और उसे घुमाना शुरू कर दिया। यह निश्चय ही कोई जादुई छड़ी होगी क्योंकि मैंने देखा कि थोड़ी देर में उसके चेहरे के दो बड़े मुंहासे गायब हो गए। और जब हम अपने गंतव्य पर उतरे, ड्राइवर का चेहरा टमाटर की तरह चिकना और चमकदार हो चुका था। लेकिन उसको इसका अहसास तक नहीं था।

टैक्सी से उतरकर मैंने अपनी टोपी पहनी और गायब हो गया। लिकी ने जादुई छाते का रुख अपनी तरफ किया और छाते सहित अन्तर्ध्यान हो गए। अलबत्ता छाते की नोक ज़रूर दिख रही थी जो फुदक-फुदक कर चलने वाली चिड़ियों जैसी जान पड़ती थी।

"अब आप मेरे साथ इस बगीचे में आ जाइए। देखिए मैं उस बदमाश कुत्ते से कैसे निपटता हूं। गेट बन्द कर लीजिएगा। अगर हममें से किसी को वह काटे भी तो उसे रोकना नहीं है। वैसे वह काटेगा नहीं।" लिकी ने मुझे समझाते हुए कहा।

जैसे ही मैंने गेट बन्द किया एक बड़ा-सा कुत्ता गुर्राता हुआ हमारी तरफ लपका। उसकी आंखों में गुस्सा तो था लेकिन वह थोड़ा किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा दिखा। वह जल्द ही गुर्राहट छोड़कर सूंघने लगा। अचानक ऐसा लगा कि उसने हमले का मन बना लिया है। मेरा ऐसा मानना है कि ग्रेहाउंड कुत्तों के अलावा अन्य प्रजातियां, जो दिखता है, उससे कहीं अधिक सूंघने पर ध्यान देती हैं। जो भी हो वह कुत्ता तो लिकी की तरफ दौड़ पड़ा। मैं अंदाज़ा लगा सकता था कि वे कहां हैं क्योंकि छाते की नोक दिखाई दे रही थी। जैसे ही कुत्ता उनकी तरफ दौड़ा, छाते की नोक ऊपर उठी और हल्के बैंगनी रंग का धुंए का छल्ला कुत्ते की तरफ लपका। कुत्ता रुका नहीं बल्कि पहले से कहीं ज़्यादा बौखलाया हुआ दिखा। तभी लिकी के बाएं पैर की पिंडलियों वाला हिस्सा दिखा। यह सब अटपटा लग रहा था। आखिरकार, कुत्ते को ऐसा कुछ नज़र आ गया जिसे वह काट सकता था। वह गुर्राते हुए पैर की तरफ झपटा। लिकी का बायां पैर बिल्कुल स्थिर था और इसके पहले कि मैं उसे रोक पाता, कुत्ते ने काट लिया। आपको ख्याल होगा कि कुत्ता जब गुस्से में होता है तो कैसा दिखता है? उसके होंठ ऊपर उठ जाते हैं और सभी दांत बाहर की तरफ निकल आते हैं। मुझे इस कुत्ते के पैने दांत दिख रहे थे, लेकिन वे लिकी की पतलून के अन्दर नहीं घुस सके। लिकी ने मुझे बताया, "उसके दांत तो मुड़ गए थे। दरअसल मैंने उन्हें रबर में बदल दिया था – सिर्फ चार दाढ़ छोड़कर। उनकी मदद से वह बिस्किट चबा सकता है।"

"अरे, कुत्ते का मालिक आ गया।

मुझे अब अपना पांव भी छुपा लेना चाहिए'', लिकी बड़बड़ाए। कुत्ते का मालिक चिड़चिड़ा-सा दिख रहा था। उसके आते ही पैर गायब हो गया। दरअसल लिकी ने अपना पैर हवा में उठा लिया। मैंने अपने जीवन में कभी किसी कुत्ते को इतना बुरा फंसा हुआ नहीं देखा था। वह हवा में टंगा हुआ था, उसका मुंह खुला था और दांत एकदम मुड़े हुए थे। तभी वह धम्म से नीचे गिरा और दुम दबाकर भागा।

और वह चिड़चिड़ा मालिक! वह तो फटी आंखों देखता ही रह गया। उसके पैर पसरे रह गए और मुंह खुला। वह बिल्कुल किसी बुत की तरह इस पूरे घटनाक्रम को देखता रहा। उसने देखा कि बगीचे के गेट का हैंडिल घूमा, गेट खुला और फिर हमारे बाहर निकलने पर बंद हो गया। गली के कोने पर पहुंचने पर हम दोनों फिर से प्रकट हो गए। मुझे काफी राहत महसूस हुई क्योंकि अपने अंगों को महसूस कर पाना, जो दिख नहीं रहे हों, काफी विचित्र-सा अहसास था। टैक्सी में बैठते हुए लिकी ने कहा, ''अगर उस चिड़चिड़े आदमी के पास थोड़ी-सी भी अक्ल होगी, जो कि उसके पास नहीं है, तो इस रबर के दांत वाले कुत्ते की मदद से वह अपना भाग्य सुधार सकता है। मेलों में वह इस रबर के दांत वाले कुत्ते से कटवाने के लिए हरेक से आठ आने तो मज़े से वसूल सकता है।''

''बस! आज इतना ही काम था। हम लंच के लिए जावा जाने वाले थे। अरे नहीं! अब तो काफी देर हो चुकी है। सूरज ढलने को है। वहां तक पहुंचते-पहुंचते अंधेरा हो जाएगा। चलो हिन्दुस्तान में कहीं चलते हैं।'' लिकी ने कहा।

''इस मौसम में मांडू जाना अच्छा रहेगा। हम लोग जादुई दरी से चलेंगे। आपको एक पैराशूट की ज़रूरत होगी, खुदा-ना-खास्ता आप दरी से टपक पड़ें। राक्षसों -जिन्नों से बचाव के लिए आपको ताबीज़ भी चाहिए होगी। साथ ही मच्छरों से बचाव के लिए अकरकरा का तेल लेना होगा। कुछ गरम कपड़े भी चाहिए होंगे। इस समय वहां दोपहर के तीन बज रहे हैं। हालांकि लंदन की अपेक्षा आप वहां ज़्यादा गर्मी महसूस करेंगे।'' लिकी ने मुझे समझाया।

काम निपटाकर जब हम लिकी के घर लौटे तो वहां बड़ी हलचल थी। तमाम तरह की जादुई चीज़ें घटित हो रही थीं। अलमारी का दरवाज़ा खुद खुला और कपड़े, ताबीज़, जादुई छड़ी, तंत्र-मंत्र की किताबें और भी जाने क्या-क्या खुद-ब-खुद एक बड़े पिटारे में जमा होते जा रहे थे। पिटारा भरते से ही खुद-ब-खुद बन्द हो गया। दूसरी टोकरी से एक सांप निकला और

दो बार पिटारे के इर्द-गिर्द लिपट गया, मानो किसी पार्सल को भेजने के लिए तैयार कर रहा हो। फिर उसने पूंछ और सिर को आपस में इस तरह लपेट लिया जैसे कि गठान लगाते हैं। लिकी ने कहा, "क्लिमेंशिया सुतली का मेरा खर्च बचा देती है। इस तरह वह मेरे सामान की चोरों से रक्षा करते हुए पूरी दुनिया को भी देख पाती है। चूंकि हम बहुत ऊंचाई पर उड़ेंगे इसलिए मुझे आपके ऊपर कुछ जादू करना पड़ेगा क्योंकि पांच मील की ऊंचाई पर हवा अत्यंत विरल हो जाती है। मैं आपको ऑक्सीजन लेने के लिए एक उपकरण दे सकता हूं जिसका इस्तेमाल अक्सर हवाबाज़ करते हैं। लेकिन, कहीं वह रास्ते में खराब हो गया तो मुझे यह भी पता नहीं कि इसको सुधारा कैसे जाता है। वैसे मैं इन सारी मशीनों की कोई परवाह नहीं करता, ये तो हमारे पुराने जादू का पासंग भर भी नहीं हैं। अगर मैं अभी आपको एक जादुई खुराक दूं तो उसका असर होने में भी आधा घंटा लग जाएगा, इसलिए सबसे आसान तरीका होगा कि आपके किसी अंग को खोल लिया जाए ताकि इसे सीधे अंदर डाला जा सके। ऐसा ही करते हैं; यहां बैठ जाइए और अपना बायां पैर इस स्टूल पर रखिए। मैं आपके पैर को निकालना चाहता हूं।"

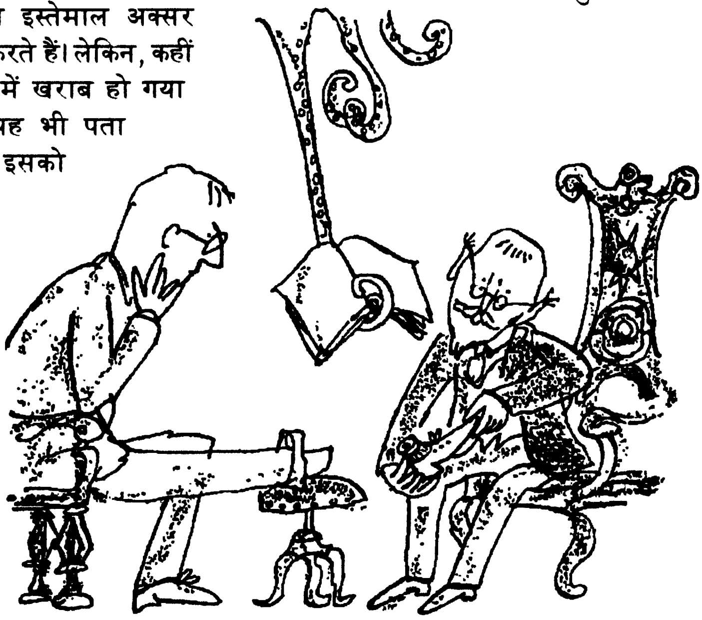

ऑक्टोपस द्वारा दी गई विशाल किताब के कुछ पन्ने

पलटकर लिकी ने एक मंत्र पढ़ा। फिर उन्होंने जूते-मोजे सहित मेरा बायां पांव पकड़ा और खोलकर निकाल लिया। अरे वाह! ज़रा-सा भी दर्द नहीं हुआ। उन्होंने पैर को टखने के ठीक ऊपर से निकाला। खून की एक बूंद भी नहीं टपकी। मुझे टखने के ऊपर की दो हड्डियां बिल्कुल साफ नज़र आ रही थीं। फिर उन्होंने हवा भरने वाले पंप जैसा कोई सुनहरा उपकरण निकाला और मेरे पैर के ठूंठ पर एक फुहार-सी छोड़ी। मैंने पैरों के ज़रिए ऊपर तक चढ़ते गुनगुनेपन को महसूस किया। इसके बाद उन्होंने फिर से मेरा पांव लगा दिया। मुझे अभी भी जोड़ दिखाई पड़ रहा था, लेकिन लिकी ने फिर से कोई मंत्र पढ़ा और मेरा पैर बिल्कुल पहले जैसा दिखने लगा।

उड़ने की तैयारी करते हुए मैंने पैराशूट और लाइफबेल्ट पहन लिए। मुझे एक जादुई छड़ी भी दी गई। इसी बीच एक बड़ी-सी लिपटी हुई दरी उठाए हुए जिन्न अब्दुल मक्कार हाज़िर हुआ। जैसे ही उसने दरी को खोला उस पर कुछ अजीब तरह के पैटर्न बने दिखाई दिए। शायद अरबी में कुछ लिखा भी था। हम लोग दरी पर खड़े हो गए। अब्दुल मक्कार ने क्लिमेंशिया के फन्दे को पकड़ कर पिटारे को भी दरी पर रख लिया। साथ में कई कुशन भी थे। उसके बाद अब्दुल मक्कार दूसरे कमरे से धधकती, कोयले की आगवाली अंगीठी उठा लाया। मैंने देखा कि उसने लाल-सुर्ख लोहे को हाथ से पकड़ा हुआ है। लेकिन यह तो सभी जानते हैं कि इस तरह के काम जिन्न आसानी से कर लेते हैं। पॉम्पी भी छलांग लगाकर, कोयले की अंगीठी पर कुंडली मारकर आराम से बैठ गया। हम सब कुशन पर आसीन हो गए।

लिकी ने कहा, "आप सभी अपनी आंखें बन्द कर लीजिए, नहीं तो आपको चक्कर आ सकता है; हम उड़ने ही वाले हैं।" मैंने वैसा ही किया और यह महसूस किया कि दरी ऊपर उठ रही है। मैं यह नहीं जान सका कि हम छत से बाहर कैसे निकले लेकिन महसूस हुआ हम बहुत तेज़ी से ऊपर उड़ रहे हैं। और उसके तुरंत बाद हमें महसूस हुआ कि हम नीचे गिर रहे हैं। मैंने अपने जबड़े कस लिए और सबकी खैर मांगने लगा। जब मुझे आंखें खोलने को कहा गया तो चमकदार धूप थी, हालांकि हमने जब लंदन छोड़ा था तब वहां बादल छाए हुए थे। उत्सुकता-वश मैंने सरकते हुए, दरी के किनारे पहुंचकर नीचे झांका। हमारे नीचे बादलों के समुद्र के सिवा और कुछ नज़र नहीं आ रहा था। हम लोग तेज़ गति से दक्षिण-पूर्व दिशा में उड़ते जा रहे थे, लेकिन हवा का अहसास भी नहीं हो रहा था।

हमारे मेज़बान ने बताया, "दरी

के आसपास की हवा भी दरी के साथ उड़ रही है, अगर ऐसा नहीं होता तो हवा के तेज़ थपेड़ों से हम फिंका जाते। साथ ही मैंने दरी पर ऐसा तिलिस्म लगाया है ताकि दरी पर गर्माहट बनी रहे।'' बादलों के बीच से पल भर के लिए हमने इंग्लिश चैनल की झलक देखी, उसके तुरंत बाद हम फ्रांस के ऊपर से गुज़र रहे थे। पेरिस के ऊपर से गुज़रते हुए मैं एफिल टॉवर की एक झलक देख सका। उसके बाद घनघोर बादलों के ऊपर से गुज़रने के बाद बाईं ओर आल्प्स पर्वत दिखाई दिए। हमने इन्हें आसानी से पार कर लिया क्योंकि हम लोग माउंट ब्लांक के भी दो मील ऊपर से उड़ते हुए उत्तरी इटली से गुज़रे। और फिर एड्रियाटिक सागर को पार किया। यात्रा शुरू करने के दसवें मिनट में हम दक्षिणी ग्रीस को पार कर रहे थे। जब हम भूमध्य सागर के ऊपर से गुज़र रहे थे तो लिकी ने मेरी गर्दन में एक ताबीज़ डाल दी और बोले, ''वहां नीचे फारस की खाड़ी है; यहां के जिन्न आपको परेशान कर सकते हैं।'' फिर पूछा, ''हम लोग मांडू की बजाए उत्तर भारत की किसी अन्य जगह जाएं तो कैसा रहेगा। दिल्ली जाना कैसा रहेगा?''

हम लोग कुछ मिनट के लिए फारस और बलुचिस्तान के दक्षिणी तट के ऊपर उड़ते रहे। मैंने बगदाद और भारत के रास्ते पर कुछ समुद्री जहाज़ और दो हवाई जहाज़ देखे। वे हमसे काफी नीचे थे और हम इतनी तेज़ रफ्तार से जा रहे थे कि उनका चलना खड़े रहने जैसा लग रहा था। हम लोगों ने सिंधु नदी का मुहाना और कराची शहर पार किया। इसके बाद फिर एक रेगिस्तान में दाखिल हुए। इस रेगिस्तान को पार करते ही मैंने महसूस किया कि दरी धीमी हो रही है। नीचे एक बड़ी नदी दिखी। मैंने अनुमान लगाया यह यमुना नदी होगी। उसके किनारे एक शहर था जिसमें एक बड़ा-सा गुंबद और उसके किनारे चार ऊंची मीनारें दिख रही थीं। शहर में कई बगीचे दिखे जिनमें और भी कई सफेद भवन थे। कुछ दूरी पर एक बहुत ऊंची मीनार और एक नीले रंग का गुंबद दिखाई दिया। फिर अचानक दरी तेज़ी से नीचे की ओर गिरने लगी जिससे मैं काफी डर गया। आप सोच रहे होंगे कि लिफ्ट के ज़रिए नीचे उतरने जैसा महसूस हुआ होगा। लेकिन आपको यदि किसी खूब गहरी खदान में उतरने का अनुभव नहीं हो तो आप इसे महसूस नहीं कर सकते। ऐसा महसूस हो रहा था जैसे भीतर का सब कुछ कहीं पीछे छूटा जा रहा हो। जब नीचे उतरने की हमारी रफ्तार थोड़ी कम हो गई तो मैंने किनारे से नीचे की ओर झांका। गलियां लोगों से भरी हुई थीं लेकिन ऊपर की ओर

कोई भी नहीं देख रहा था। उनके चेहरे पर ऐसा कोई भाव ही नहीं था कि वे हमें देख रहे हों। "बन्धुवर वे हमें देख नहीं सकते। जादुई दरियां जब उड़ान पर होती हैं तो नीचे से दिखाई नहीं देतीं। नहीं तो रास्ते में जिन्न हम पर नीचे से हमला कर सकते थे। अब हम अपने एक मित्र चंद्रज्योतिष के घर जाएंगे। वे एक बहुत ही अच्छे तांत्रिक हैं।" लिकी ने फरमाया।

दरी एक सुन्दर से छोटे बाग में उतरी। बाग में बहुत से फव्वारे लगे हुए थे और एक तरफ संतरे के पौधों की कतार थी। बाग के चारों ओर संगमरमर के सफेद स्तंभ चमक रहे थे। हम लोग दरी से नीचे उतरे। अब्दुल मक्कार ने पिटारे और पॉम्पी को नीचे उतारा। दरी ने खुद को समेटा और कोने में खड़ी हो गई। इतने में दो खूबसूरत औरतें घर से बाहर आईं। एक थोड़े भूरे रंग की गोल चेहरेवाली और दूसरी ज़र्द रंग की, ढलवां आंखों वाली थी। उसने नाक में नीलम की ज़रदोज़ी की हुई नथ पहनी थी।

लिकी ने बताया, "ये हैं सीताबाई और राधाबाई चंद्रज्योतिष।" वे उनसे इतनी फर्राटेदार उर्दू में बतिया रहे थे कि मैं इसके सिवा ज़्यादा कुछ नहीं समझ पाया कि मिस्टर चंद्रज्योतिष बाहर गए हुए हैं। तभी एक तीसरी श्रीमती चंद्रज्योतिष भी हाज़िर हुईं। आपको पता होगा कि हिन्दुस्तानी अगर चाहें तो कितनी भी औरतों से शादी कर सकते हैं। वह कुछ-कुछ गेहुंए, गोरे चेहरेवाली थीं। मैंने उनके लंबे-नुकीले कानों से अन्दाज़ लगाया कि वह तो एक 'जिन्नी' है। दरअसल मैं पहली बार एक महिला जिन्न को देख रहा था। उसने पॉम्पी को उठाकर अपनी गोद में बिठा लिया जबकि वह आग में बैठे-बैठे लाल-सुर्ख हो गया था। फिर वह उसे गंधक के डल्ले खिलाने लगी।

चंद्रज्योतिष के घर लौटने तक हम दिल्ली घूमने निकल गए। मैं आपको यहां दिल्ली के बारे में नहीं बताऊंगा क्योंकि वह तो आप भारत पर लिखी किताबों को पढ़कर जान सकते हैं। लेकिन मुझे यहां का पुराना किला और भव्य जामा मस्जिद ज़रूर बहुत पसंद आए। और यहां पर किन्नर बाज़ार के उत्तरी कोने की एक छोटी-सी दुकान में आप दुनिया की सबसे बेहतरीन और किफायती मिठाइयां पा सकते हैं। मिठाई खरीदते समय हमने देखा कि बगल की नाली में बैंगनी आंखोंवाला नेवला, चूहों का शिकार कर रहा था।

दिल्ली की सैर करके हम लोग दोपहर के खाने के लिए वापस लौट आए। भोजन बहुत ही स्वादिष्ट था। चंद्रज्योतिष महोदय लौट आए थे। वे गोल-मटोल व मज़ेदार व्यक्ति थे और

उनकी पगड़ी में एक रत्न जड़ा हुआ था। वे बढ़िया अंग्रेज़ी बोल रहे थे, सिवाय 'स्टेशन' को 'इस्टेशन' और 'बॉक्स' को 'बोकस' कहने के। हमने पहले मछली और मसालेदार मुर्गा खाया। पन्ना के कप में छलकती हुई शराब पी। भोज का समापन मिठाइयों और आम के साथ किया। हालांकि यह आमों का मौसम नहीं था, लेकिन चंद्रज्योतिष महोदय के एक नौकर ने हमारी आंख के सामने ही एक डलिया के नीचे आम का बीज बोया। और फिर चार बार डलिया उठाई। पहली बार हमने बीज को अंकुरित होते देखा। दूसरी बार डलिया के नीचे एक छोटा सा पौधा नज़र आया। फिर उसमें फूल दिखाई दिए और अंत में वह फलों से लद गया। मुझे लिकी का तरीका ज़्यादा पसंद आया जिसमें हम पेड़ को बड़ा होते हुए देख सकते थे। मुझे कहीं ज़्यादा मज़ा आया जब चंद्रज्योतिष के एक नौकर ने एक रस्सी हवा में उछाली और फिर उस पर चढ़कर वो गुम हो गया। बाद में उसने लटकती हुई रस्सी भी खींच ली।

लिकी ने कहा, "मैं ऐसा करने में बिल्कुल ही समर्थ नहीं हूं।"

"आप ठीक तरह से मंत्रों का उच्चारण नहीं कर रहे हैं। इसी में अधिकांश यूरोपीय जादूगर मार खा

जाते हैं।" चंद्रज्योतिष ने कहा।

लिकी ने उच्चारण का अभ्यास कर अंततः उसे ठीक कर लिया। चंद्रज्योतिष महोदय के प्रति कृतज्ञता ज़ाहिर करते हुए उन्होंने कहा, "मेरे पिटारे में जादू की बहुत सारी किताबें हैं जिन्हें देखकर आपको अच्छा लगेगा।"

इसके बाद हम लोग बाहर बगीचे में आ गए। पहली बार मैंने लिकी को इस तरह से चिंतित देखा। पिटारा पूरी तरह से खुला हुआ, सब चीज़ें बिखरी हुईं। क्लिमेंशिया! जिससे डलिया बंधी हुई थी, आधी कुंडली मारे और आधा फन उठाए, हवा में इस कदर लहरा रही थी मानों उसने दारू पी रखी हो। लिकी ने कहा, "ये सब सांप अब वैसे नहीं रहे जैसे मैंने अपनी जवानी के दिनों में देखे थे।"

"मेरे खयाल से मेरे नौकर प्यारे लाल ने जादू चलाने की कोशिश की है।", चंद्रज्योतिष ने कहा। हमने उसे ढूंढने की कोशिश की परन्तु वह नदारद था। एक किताब जिस पर विचित्र तरह की लिखावट थी, खुली पड़ी थी।

"क्या वह देवनागरी समझता है?" लिकी ने पूछा।

"हां, लेकिन वह जादू में इतना पारंगत नहीं है।", चंद्रज्योतिष ने जवाब दिया। उन्होंने आगे बताया, "अच्छा ही है क्योंकि किताब का वह पन्ना खुला है जिसमें आदमी को टिड्डे में बदलने का मंत्र है। वह हमें टिड्डों में बदल सकता था, और मुझे पूरा विश्वास है कि मैं ठीक से चें-चें नहीं कर पाता। लेकिन वो शायद खुद ही अपने चक्कर में फंस गया है। अगर उसने पेज 17 पर लिखित मंत्रों को पहले नहीं पढ़ा होगा तो वह खुद ही टिड्डा बन गया होगा। चूंकि वह हमारा बहुत ही वफादार नौकर है इसलिए उसे फिर से आदमी बना देना आवश्यक है। सौभाग्य से मैं एक ऐसा मंत्र जानता हूं जिससे एक मील के भीतर जितने भी टिड्डे होंगे वे सब यहां आ जाएंगे। यह बिल्कुल ही काले जादू की तरह है। इसका इस्तेमाल जादूगर अपने पड़ोसियों की फसल बर्बाद करने के लिए करते हैं।" और उन्होंने अपनी पत्नी से बड़ा नगाड़ा लाने के लिए कहा। फिर लिकी से मुखातिब होकर उन्होंने पूछा, "क्या आप मेरे संतरे के पौधों के इर्द-गिर्द तीन गोले खींचेंगे? मैं नहीं चाहता कि टिड्डे उन्हें खा जाएं। इसके बाद घास को भी बचाना होगा।"

नूर-ए-दुनिया, चंद्रज्योतिष की जिन्न पत्नी, एक विशाल नगाड़ा लेकर बाहर आई। चंद्रज्योतिष उस नगाड़े के चारों ओर नाचने लगे। वे काफी तेज़ी से नाच रहे थे। मंत्र पढ़ते हुए, नाचते हुए वे एक बैंगनी रंग के छाते से ताल देते जा रहे थे। लिकी ने बताया कि केवल किताब पढ़कर इस मंत्र का प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि उसके लिए खास तरह के नृत्य की भी

जानकारी होनी चाहिए।

इस बीच नूर-ए-दुनिया ठीक हमारे सिर के ऊपर कुछ जादू करती हुई उड़ रही थी। "तितलियों, गुबरैलों और मधुमक्खियों को दूर रखने के लिए नूर-ए-दुनिया कुछ तिलिस्म कर रही है", लिकी ने दो गोले खींचते हुए कहा। तभी हवा में अजीबो-गरीब शोर पैदा हो गया और तरह-तरह के कीड़े मकोड़े वहां पहुंचने लगे। इससे पहले कि मधुमक्खियों और गुबरैलों से बचने का मंत्र-वृत्त पूरा हो, उनका एक पूरा झुंड आ पहुंचा। उसके बाद बगीचे में केवल टिड्डे उतरना शुरू हुए। बाकी सब कीड़े घर के ऊपर मंडराते रहे। कुछ ही मिनट में हमारे ऊपर पक्षियों का झुंड जमा होकर इन्हें निगलने लगा।

"हमें अपने इन मेहमानों का भोज रोकना होगा। संभव है वे हमारे प्यारे लाल को भी खा जाएं। कृपया इन्हें भगाओ।" चंद्रज्योतिष ने नूरे-दुनिया से कहा। नूरे-दुनिया कीड़ों के बादलों के बीच से उड़ते हुए निकली और फौरन ही सारे पक्षी तितर -बितर हो गए। दूसरी ओर पूरी ज़मीन टिड्डों से पट गई थी।

मधुमक्खियां, गुबरैले और तितलियां इतनी भारी संख्या में आसमान में मौजूद थे कि बाहर अंधेरा हो गया था। नौकरों को लालटेन जलानी पड़ी। साथ ही वे एक बड़ा-सा हीरा भी बाहर ले आए जिसके अंदर से रोशनी निकल रही थी। इस रोशनी में हमने देखा कि ज़मीन और दीवार पूरी तरह से टिड्डों से पटी हुई थी। एक-दूसरे पर लदे-फदे टिड्डे घिसट रहे थे। उनकी आवाज़ सुनकर ऐसा लगता था मानों सैकड़ों घंटियां एक साथ बज रही हों। हमें बात करने के लिए खूब ज़ोर से चिल्लाना पड़ रहा था। लेकिन तभी लिकी ने एक किताब से कोई मंत्र पढ़ा और टिड्डों की आवाज़ एकदम बंद हो गई।

लिकी ने पूछा, "क्या आप इनमें से प्यारे लाल को पहचान सकते हैं?"

"ना, बिल्कुल नहीं।" चंद्रज्योतिष ने असमर्थता व्यक्त की

लिकी ने उन्हें दिलासा दिया, "चिंता न करें, अब्दुल मक्कार पहुंचता ही होगा। वह उन जीवों को तुरंत पहचान लेता है जो आदमी या औरत पर जादू करके बनाए गए हों।"

तभी अब्दुल मक्कार हाज़िर हुआ। वह ज़मीन पर बिछे टिड्डों के बादल को हटाते हुए हम तक पहुंचा। लिकी ने उसे तुरंत प्यारे लाल को ढूंढने के लिए कहा। उसने बड़ी आसानी से एक ही नज़र में प्यारे लाल को ढूंढ लिया। अब चंद्रज्योतिष ने एक मंत्र पढ़ा और वह टिड्डा आदमी की काया में बदलने लगा। यह काया परिवर्तन मज़ेदार था। पहले तो टिड्डे का बदन फूल गया और फिर चमड़ी फटी, जैसा कि टिड्डों

के केंचुल उतारने के समय होता है। इसमें से इल्ली जैसी कोई चीज़ निकली। फिर वह तेज़ी से गुलाबी सूंडी में बदल गई। फिर उसपर चार जगह गुमट उभर आए। ये गुमट हाथों और पैरों में बदलने लगे। फिर उस कीड़े के सामने का हिस्सा पीछे की तरफ मुड़ा और सिर में बदल गया। इस बीच चारों गुमटों में उंगलियां और अंगूठे निकलने लगे। सभी अंग लगातार बढ़ते जा रहे थे। दो मिनट के भीतर ही एक संपूर्ण आदमी हमारे सामने घास पर लेटा हुआ था। इतना डरा हुआ आदमी मैंने कभी नहीं देखा।

एक चीज़ मुझे अटपटी लग रही थी कि टिड्डे का पिछला हिस्सा प्यारे लाल के आगे के हिस्से में बदला गया था। बाद में यह वात मैंने अपने एक प्राणीशास्त्री मित्र को बताई। उसका कहना था कि इसमें कोई समस्या नहीं है क्योंकि टिड्डे का दिल पीठ की तरफ होता है, फिर उसकी आंतें और उसके नीचे तंत्रिका तंत्र होता है। या हम इस प्रकार कह सकते हैं कि आदमी का सामने का हिस्सा, टिड्डे का पीछे का हिस्सा बन जाता है अथवा टिड्डे के पीछे का हिस्सा आदमी के आगे का हिस्सा होता है।

प्यारे लाल ज़मीन पर लेटकर मारे भय के चीखने लगा। चंद्रज्योतिष ने एक और मंत्र पढ़ा तो वह उठ कर खड़ा हो गया, लेकिन उसके चेहरे का एक हिस्सा हरा था और दूसरा लाल। उसके बाल बैंगनी रंग के हो गए थे। "यह अगले एक सप्ताह तक ऐसा ही रहेगा।" यह कहकर चंद्रज्योतिष ने 'अब कभी मत आना...' मंत्र ज़ोर-ज़ोर से पढ़ते हुए उलटा नाच शुरू किया। सभी कीड़े-मकोड़े और टिड्डे शोर मचाते हुए वापस जाने लगे। लेकिन वहां अभी भी अंधेरा छाया हुआ था क्योंकि अब तक सूरज डूब चुका था।

इतने में पिटारे ने खुद को समेट लिया था। क्लिमेंशिया भी अब ठीक हो चुकी थी और उसने अपने आप को पिटारे के इर्द-गिर्द लपेट लिया था। पॉम्पी की अंगीठी चारकोल से भर दी गई थी और दरी बिछ चुकी थी।

"मुझे लगता है कि अब हमें पूरी दुनिया का एक चक्कर काटना चाहिए। निश्चित ही पूर्व की ओर जाने पर हमें रात ही मिलेगी। और रात को तो हमारी जादुई दरी और भी बेहतर उड़ सकती है", लिकी ने कहा। फिर उन्होंने मुझसे पूछा, "आप अमेरिका में किस तरफ जाना चाहेंगे?"

"मुझे दक्षिण या मध्य अमेरिका जाना अच्छा लगेगा।" मैंने कहा।

हमने चंद्रज्योतिष और उनकी दो पत्नियों से विदा ली। नूरे-दुनिया को अपनी बहन से मिलने वक-वक द्वीप तक जाना था। वह चाहती थी कि

सोने के वक्त तक उससे मिल कर लौट आए। उसे थकान का अहसास हो रहा था इसलिए उसने हमारे साथ चलने का आग्रह किया था। यहां से हम लोग दक्षिण -पूर्व की ओर बढ़े। सामने दूज का चांद चमक रहा था। लेकिन पांच मील ऊपर उठते ही तारों की चमक भी बढ़ गई। इतनी रौशन रात इससे पहले मैंने कभी नहीं देखी। जैसे-जैसे हम दक्षिण की ओर गए, वे तमाम नक्षत्र दिखने लगे जिनसे पहले मेरा कोई परिचय नहीं था। एक या दो मिनट के बाद हम हिंद महासागर के ऊपर थे जो रात में चांदी की तरह चमक रहा था। हम लोगों ने निकोबार द्वीपसमूह और फिर मलाया प्रायद्वीप पार किया। मैंने देखा कि ध्रुव तारा क्षितिज से ओझल हो गया। नूरे -दुनिया और अब्दुल मक्कार किसी जिन्न-भाषा में बात करने में तल्लीन थे। लिकी ने स्वीकार किया कि वे भी इस भाषा को ठीक से नहीं समझ पाते। मुझे केवल इतना समझ में आया कि अब्दुल की चाची परेशान है क्योंकि उनके खूब सारे अतिरिक्त दांत निकल रहे हैं।

कुछ देर बाद हम जावा द्वीप के ऊपर से गुज़र रहे थे। यह जावा का एक ज्वालामुखी है। हम लोग थोड़ा बायीं ओर मुड़े और फिर एकाध मिनट में मालुका द्वीप के ऊपर थे। मुझे पता था इनको ही वक-वक द्वीप के नाम से जाना जाता था क्योंकि अरेबियन नाइट्स के हसरा-बसरा की कथा में मैंने इसके बारे में पढ़ा था। नूरे-दुनिया ने यहां पहुंचकर लिकी और हम सबको अलविदा कहा।

"अब हमें मध्य अमेरिका की तरफ चलना चाहिए", श्री लिकी ने जारी रखा, "अभी हम लोग ब्रिटिश गयाना के ठीक विपरीत हैं। इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम किस रास्ते से अमेरिका जाते हैं।

"हम लोग यहां से दक्षिण की तरफ चलते हैं। ठीक दक्षिण ध्रुव के ऊपर से। अभी तो वहां दिन होगा न?" मैंने पूछा।

लिकी ने कहा, "बिल्कुल ठीक फरमाया आपने।" और हम दक्षिण की तरफ बढ़ लिए। थोड़ा आगे जाकर हम लोग ऑस्ट्रेलिया के ऊपर से गुज़रे। रास्ता हवाई मार्ग वाला ही था, अन्तर केवल हमारी गति में था – हम लोग वायुयान से दो सौ गुना ज़्यादा तेज़ी से उड़ रहे थे। आगे जाकर हम एक विशाल मरुस्थल को पार करते हुए दक्षिण की ओर बढ़े। हमने एक झील देखी जो चांदनी में चमक रही थी। लेकिन किसी भी शहर की कोई रोशनी नहीं दिखी। आसमान में कई ऐसे चमकदार तारे दिखे जिन्हें मैं नहीं जानता था। आसमान में मुझे रोशनी के दो विचित्र धब्बे भी दिखे जो कुछ-

कुछ आकाश गंगा की तरह दिखाई दे रहे थे। लिकी ने बताया कि इन्हें 'मेगेलान्स क्लाउड' कहते हैं। उसके बाद दक्षिण पश्चिम की तरफ बढ़ते ही सूर्य को उगते देखकर मुझे आश्चर्य हुआ; हालांकि बाद में मुझे समझ में आया कि ऐसा ही होना चाहिए था। हमारे नीचे बादल थे फिर भी हम उनके बीच में से झांकते समुद्र और आइसबर्ग को बखूबी देख पा रहे थे।

"क्या हम समुद्र तट पर पहुंच कर कुछ देर रुक सकते हैं, क्योंकि मुझे पेंगुइन देखने हैं।" मैंने लिकी से पूछा। उन्होंने कहा, "निश्चित ही, लेकिन हमें कुछ गर्म कपड़े पहनने होंगे क्योंकि जब अंटार्कटिक पर धूप हो तब भी काफी तेज़ सर्द हवाएं चलती हैं। फिर उन्होंने क्लिमेंशिया को पिटारा खोलने का आदेश दिया। पिटारे से उन्होंने फर के दो कोट, लंबे जूते, मोटे मोजे और कुछ अन्य गर्म कपड़े निकाले। हम लोग नीचे उतरते ही एक निर्जन तट पर आ गए, जहां बर्फ की चोटियां थीं और उनके पीछे ऊंचे-ऊंचे पहाड़। लिकी ने कहा, "यहां पेंगुइनों का एक पूरा शहर बसा हुआ है – पांच लाख के करीब आबादी होगी उनकी।"

यहां से हम पेंगुइनों के झुंड देख सकते थे। वहां हरेक जोड़े ने पत्थर से अपना एक गोलाकार घोंसला बनाया था। जोड़े में से कोई एक हमेशा ही अंडों की देखरेख के लिए घोंसले में रहता था। जबकि दूसरा समुद्र में झींगे का शिकार करके उनके लिए लाता था। यहां पर वे हज़ारों की संख्या में बतखों की तरह छप-छप कर रहे थे। दृश्य कुछ ऐसा था मानो हज़ारों मोटे आदमी सांध्य वस्त्र पहन कर टहलने निकले हों! महाकाय पर्वतों और ग्लेशियर से भरे इस पूरे महादेश में पेंगुइनों के अलावा जीवन का कहीं भी कोई संकेत नहीं था। फिर हम दक्षिणी ध्रुव के ऊपर से होते हुए, समुद्र को पार करके दक्षिण अमेरिका पहुंचे। फिर से घास और हरियाली देखकर हमें बहुत अच्छा लगा। अर्जेन्टीना के ऊपर से गुज़रते हुए हम काफी नीचे उतर आए ताकि यहां के पशुओं के विशाल झुण्डों को देख सकें। इसके बाद हम ब्राज़ील पहुंच गए। अब गर्मी थोड़ी बढ़ चली थी इसलिए हमने पिटारे में से टोप, सिल्क का कुर्ता और हाफ पैंट निकाल कर पहन लिए। जब मैंने नीचे देखा तो मुझे ठोस हरी चादर-सा कुछ दिखा। बाद में लिकी ने बताया कि यह घास का मैदान नहीं बल्कि पेड़ों के शीर्ष हैं। हम लोग थोड़ी देर के लिए अमेज़न नदी के ऊपर रुके। इस नदी की चौड़ाई इंग्लिश चैनल के बराबर थी। इसके तेज़ बहाव की चपेट में बड़े वृक्ष भी बहे जा रहे थे। कई पर्वतों को पार करके जब हम फिर समुद्र तक पहुंचे तो

मेरी घड़ी में साढ़े तीन बज चुके थे।

"चलिए अब ज्वालामुखी का नज़ारा लें", लिकी ने कहा। यहां पर एक सक्रिय ज्वालामुखी था जिसमें से गड़गड़ाहट के साथ लगातार धुएं के बादल निकल रहे थे। हम लोग क्रेटर के एकदम किनारे, एक काली चट्टान पर उतरे थे। हमने आगे बढ़कर क्रेटर के अन्दर झांका। मुझे अंदर का नज़ारा बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगा। ऐसा लग रहा था मानों वो हमारे ऊपर ही निशाना साध रहा हो। हालांकि मैंने ताबीज़ पहन रखा था और यह यकीन था कि मुझे कोई हानि नहीं होगी, फिर भी धमाकों के समय पत्थरों से बचाव के लिए अनायास ही मेरा सिर झुक जाता। एक-दो मिनट में ही इससे मेरा मन भर गया। अब मैं ज्वालामुखी की बाहरी ढलान की तरफ आ गया। इस तरफ सुर्ख लावा की एक धार बह रही थी।

यह एक घिनौनी और निर्जन जगह थी जो किसी सामान्य पहाड़ की बजाए, धातु-मल के ढेर जैसी दिख रही थी। पूरी ज़मीन भुरभुरी थी और पौधों का नामोनिशान तक नहीं था। मैंने लिकी को आवाज़ लगाई। उन्होंने बताया कि वे सल्फर इकट्ठा कर रहे हैं। दरअसल एक जादूगर को ज्वाला-मुखी से निकली गंधक की ही ज़रूरत होती है। वे कारखाने में बनी गंधक इस्तेमाल नहीं करते। इसके बाद हमने समुद्र तट पर चाय पी और दरी पर सवार होकर इंग्लैंड यानी अपने घर के लिए रवाना हुए।

जैसे ही हम लिकी के घर में दाखिल हुए, कमरा बिल्कुल पूर्ववत और व्यवस्थित लग रहा था; अलबत्ता बाहर से खरखराहट की आवाज़ आ रही थी। दरवाज़ा खोलते ही एक अत्यंत दीन-हीन व्यक्ति अन्दर आया। उसकी नाक एक लंबी गुलाबी रस्सी की तरह खिंची हुई थी, जिसकी लम्बाई लगभग तीन फीट थी। इसका एक सिरा दरवाज़े के हैण्डल के साथ चिपका हुआ था। अब्दुल मक्कार को देखते ही उसने पीछे खिसकना चाहा तो उसकी नाक रबर की तरह खिंचती चली गई।

"ओ मेरे आका! क्या मैं इस चोर की खाल खींच लूं या इसकी आंखों के सामने इसकी आंतें निकाल लूं और इसके गुर्दे खौलते तेल में तल दूं।" जिन्न ने पूछा।

"ऐसी सज़ा! अरे अब्दुल मक्कार ये सब तो लन्दन में अप्रचलित हो चुका है।" श्री लिकी ने कहा।

फिर वे चोर से मुखातिब हुए और कहा, "शुक्र करो कि हम, दो-तीन दिन के लिए बाहर नहीं गए थे। क्योंकि मेरे सिवा और कोई तुम्हारी नाक को हैंडल से नहीं छुड़ा सकता था। अभी तो मैं तुम्हारी नाक छोड़ देता हूं लेकिन

ध्यान रखना, अगली बार यदि तुमने कहीं सेंधमारी की तो तुम्हारी खैर नहीं। यह कोई ज़रूरी नहीं कि वह घर जादूगर का ही हो – परन्तु अगली बार भी सेंध मारते ही तुम्हारी नाक दरवाज़े से चिपक जाएगी और बाद में उसे कुल्हाड़ी से काटकर ही अलग कर पाओगे।"

फिर लिकी मुझसे बोले, "अब अगर आप बुरा न मानें तो मैं शुभरात्रि कहूं? क्या आप इस जादुई दरी पर कहीं और जाना चाहेंगे?"

मैंने उनको शुक्रिया कहा, "दरअसल आज के बाद तो मुझे बस-यात्रा भी काफी रोमांचक लगेगी। यह सब इतना मज़ेदार रहा कि क्या बताऊं। लगता है जैसे मैं एक माह की छुट्टी से लौटा हूं। और अब तो मैं सोमवार को काम पर जाने के लिए पूरी तरह तंदरुस्त हूं।"

सोमवार को मैं इस समस्या को सुलझाने में जुट गया कि गुलाब और बिल्लियों की नई नस्लें कैसे बनाई जा सकती हैं; क्योंकि यह मेरे काम का एक हिस्सा है। और मैं समझता हूं कि यह भी लिकी के काम जितना ही विचित्र है।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892–1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक हैं।

हिन्दी अनुवाद: लाल बहादुर ओझा: दिल्ली में रहते हैं, फ्रीलांस पत्रकारिता करते हैं।

चित्रांकन: क्वेंटिन ब्लेक।

यह कहानी माय फ्रेंड मिस्टर लिकी संकलन से साभार।

यहां मूल कहानी को संपादित करके प्रकाशित किया जा रहा है।

फोटोक्रोमिक कांच

आपने अक्सर ऐसे चश्मे पहने होंगे जिनके कांच धूप में निकलते ही काले हो जाते हैं और कमरे में घुसते ही फिर से पहले की तरह रंगहीन। चश्मेवाले जब पूछते हैं 'चश्मे में फोटोक्रोमिक/फोटोक्रोमेटिक कांच लगवाएंगे क्या?' तो उनका आशय इसी तरह के कांच से होता है।

आइए, समझने की कोशिश करते हैं कि यह किस तरह संभव हो पाता है। फोटोक्रोमिक कांच तभी काला होता है जब उससे एक खास तरंग दैर्ध्य यानी तरंग लंबाई की किरणें टकराएं, जैसे पराबैंगनी प्रकाश। वैसे तो फोटो-क्रोमिक कांच की संरचना, अन्य साधारण कांच की तरह ही होती है, लेकिन उसमें साथ में सिल्वर क्लोराइड या ऐसे ही किसी अन्य पदार्थ के सूक्ष्म क्रिस्टल मौजूद होते हैं। इन क्रिस्टल का व्यास लगभग 50 अंगस्ट्रोम (यानी एक सेमी का बीस लाखवां हिस्सा) होता है। ये रवे पूरे कांच में बिखरे रहते हैं।

सिल्वर क्लोराइड पराबैंगनी प्रकाश के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होता है। जैसे ही कांच को धूप में ले जाते हैं तो सूर्य प्रकाश में मौजूद पराबैंगनी किरणें कांच से टकराती हैं। ये किरणें सिल्वर क्लोराइड के अणुओं को दो हिस्सों – सिल्वर और क्लोरीन के परमाणुओं में तोड़ देती हैं। इस तरह से सिल्वर क्लोराइड से टूटकर अलग हुआ सिल्वर ही कांच को काला करता है। जब फोटोक्रोमिक कांच को धूप में से हटा दिया जाए या पराबैंगनी किरणों से दूर कर दिया जाए तो वही सिल्वर और क्लोरीन एक बार फिर से जुड़कर सिल्वर क्लोराइड का अणु बना लेते हैं; और कांच फिर से रंगहीन हो जाता है।

फोटोक्रोमिक कांच में यह दो तरफा क्रिया इसलिए हो पाती है क्योंकि कांच अक्रियाशील और अपारगम्य पदार्थ होने की वजह से सिल्वर क्लोराइड के टूटने के बाद भी सिल्वर और क्लोरीन वहीं मौजूद रहते हैं, और पराबैंगनी किरणों के बीच में से कांच को हटाते ही दोबारा आपस में मिलकर सिल्वर क्लोराइड बना लेते हैं।

कांच में कौन-सा पदार्थ मिलाया जाएगा यह इस बात से तय होता है कि हमें उसे प्रकाश वर्णक्रम के किस हिस्से के प्रति संवेदनशील बनाना है। पराबैंगनी की जगह अगर दृश्य प्रकाश के प्रति संवेदनशील कांच बनाना है तो उसमें सिल्वर ब्रोमाइड व आयोडाइड आदि मिलाए जाते हैं।

फाटाक्रोमिक काच का इस्तेमाल हवाई जहाज़ के विंड स्क्रीन और खिड़कियां बनाने में भी होता है। विशेष परिस्थितियों में इससे प्रकाश संवेदी दवाएं रखने वाली बोतलें आदि भी बनाई जाती हैं।

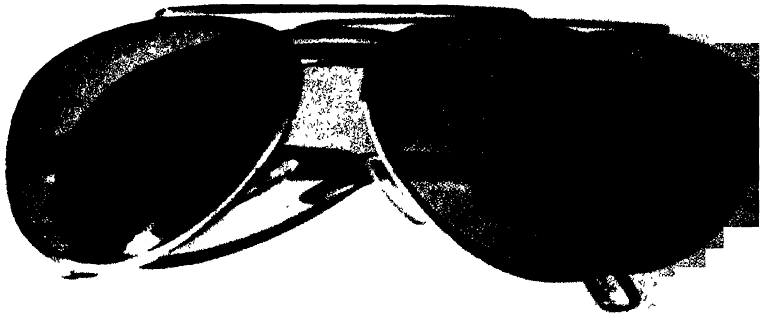

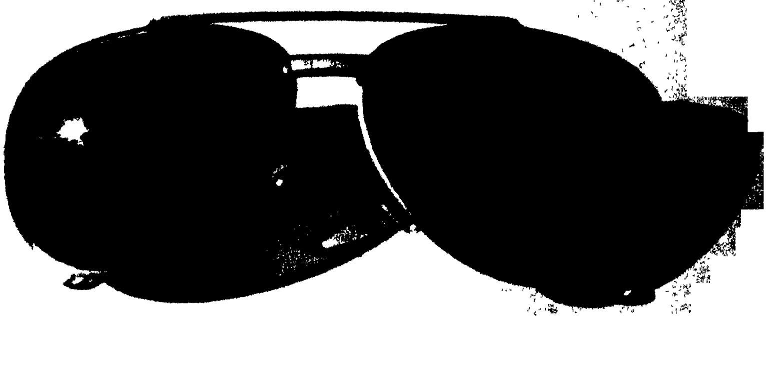

12752